
नंबर ९३

H. 9. श्रीः

॥ देवी गीता ॥

॥ जन्मेजय उवाच ॥

[illegible]धराधीशमौलावाविरासीत्परंमहः ।
[illegible]भवतापूर्व्वं विस्तरात्तद्वदस्वमे ॥१॥

[illegible]मेजयने (व्यास जीसे) पूछा आपने पहले कहा है
[illegible]त्तर यह परम ज्योति हिमालय के शिखर में प्रगट हुई
[illegible]स समय उसी परम ज्योति का विस्तार सहित हमारे
[illegible]र्णन कीजिये ॥१॥

[illegible]रज्येतमतिमान्पिवञ्छक्तिकथामृतम् ।
[illegible]न्तुपिवतांमृत्युःसनैतच्छृण्वतोभवेत्॥२॥

[illegible]न मतिमान (बुद्धिमान) व्यक्ति इस शक्ति का कथा
[illegible] करनेसे विरत होगा ? सुधा पायी (अमृत पीनेवाले)
[illegible]णों की भी काल में मृत्यु होती है, किन्तु इस शक्ति
[illegible] के पान करनेवाले की कभी मृत्यु नहीं होती ॥२॥

॥ व्यास उवाच ॥

[illegible]ोसिकृतकृत्योसिशिक्षितोसिमहात्मभिः ।
[illegible]वानसियद्देव्यांनिर्व्याजाभक्तिरस्तिते ३

व्यासदेव ने कहा कि देवी के प्रति आपकी जिसप्रकार एकान्त भक्ति परिलक्षित होती है, इससे मैं जानता हूं कि आप धन्य कृतकृत्य और महात्मागणों से शिक्षित हुये हैं, अतएव आप भाग्यवान पुरुष हैं ॥३॥

शृणुराजन्पुरावृत्तंसतीदेहेग्निभर्जिते ।
भ्रान्तःशिवस्तुबभ्रामक्वचिद्देशेस्थिरोभवत् ॥४॥
प्रपञ्चभानरहितःसमाधिगतमानसः ।
ध्यायन्देवीस्वरूपन्तुकालंनिन्येसआत्मवान् ५

हे राजन्! आप इस समय पूर्वकाल का वृतान्त श्रवण कीजिये शिवने सती का देह भस्म होने पर भ्रान्त चित्तसे अनेक स्थानोंमें भ्रमण किया अनन्तर किसी स्थान में स्थिति की और आत्मवानभव शिवजीने यहां संसार ज्ञानसे रहित और समाधि में चित्त लगाय देवी के स्वरूप का ध्यान करते हुये कुछ काल व्यतीत किया ॥४॥५॥

सौभाग्यरहितंजातंत्रैलोक्यंसचराचरम् ।
शक्तिहीनंजगत्सर्व्वंसाब्धिद्वीपंसपर्व्वतम् ६

उस समय ससागर सपर्वत चराचरात्मक यह सम्पूर्ण त्रिलोक जगत् शक्तिके अभावसे सौभाग्य हीन हुआ था ॥६॥

आनन्दःशुष्कतांयातःपर्व्वेषांहृदयान्तरे ।
उदासीनाःसर्व्वलोकाश्चिन्ताजर्ज्जचेतसः ॥७॥

सब प्राणियों का हृदयवर्ती आनन्द शुष्क होगया और

सम्पूर्ण लोक चिन्ता जर्ज्जरित चित्त होकर उदासीन भाव से अवस्थान करने लगे ॥७॥

सदादुःखोदधौमग्नारागग्रस्तास्तदाभवन् ।
ग्रहाणांदेवतानाञ्चवैपरीत्येनवर्त्तनम् ॥८॥

सभी दुःखसागर में निमग्न होकर सदाही रोगग्रस्त होने लगे, एवं ग्रहगण और देवतागण बिपरीत गतियुक्त हो उठे ८

आधिभूताधिदैवानांसत्यभावात्नृपाभवन् ९

सती देवी के अभाव से नृपतिगण आधिभौतिक और आधिदैविक पीड़ा से आक्रान्त हुये ॥९॥

अथास्मिन्नेवकालेतुतारकाख्योमहासुरः ।
ब्रह्मदत्तवरोदैत्याऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥१०॥
शिवौरसस्तुयःपुत्रःसतेहन्ताभविष्यति ।
इतिकल्पितमृत्युःसदेवदेवैर्म्महासुरः ॥
शिवौरससुताभावाज्जगर्ज्जचननन्दच ॥११॥

इसी समय में तारक नामक महा असुर ब्रह्मा जी से वर प्राप्त कर त्रैलोक्य की नायकता करने लगा ब्रह्मा जीने उस असुर से कहा कि शिव का और सजात पुत्र तेरा हर्त्ता अर्थात् मारनेवाला होगा, इसके अतिरिक्त तेरी मृत्यु नहीं है, वह महा असुर ब्रह्मा कर्तृक इसप्रकार निर्दिष्ट मृत्यु होकर शिवके और सपुत्र के अभाव बशतः गर्जनपूर्व्वक आनन्दित हुआथा ॥१०॥११॥

तेनचोपद्रुता:सर्व्वेस्वस्थानात्प्रच्युता:सराः ।
शिरौरससुताभावाच्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् १२

सम्पूर्ण देवतागण उससे उपद्रुत (घबरायकर) होकर अपने स्थानसे भागने लगे और शिवके और सपुत्रके अभाव में दुस्तर चिन्ता में निमग्न हुये ॥१२॥

नाङ्गनाशङ्करस्यास्तिकथंतत्सुतसम्भवः ।
अस्माकंभाग्यहीनानांकथंकार्य्यंभविष्यति१३
इतिचिन्तातुरा:सर्व्वेजग्मुर्वैकुण्ठमण्डले ।
शशंसुर्हरिमेकान्तेसचोपायंजगादह ॥१४॥

कारण की सती ने प्राण त्याग किया है अतएव इससमय महादेवजी भार्य्या हीन हैं, सुतरां उनके पुत्र उत्पन्न होने की संभावना नहीं है । हम भाग्य हीन हैं फिर किस प्रकार (तारकासुर का वध रूप) हमारा कार्य होगा इसप्रकार चिन्ता से कातर हुए देवताओं ने वैकुण्ठमें गमन किया और एकांत में हरि से सब वृतान्त कहा ?, तब वह इस विषयका उपाय कहने लगे ॥१३-१४॥

कुतश्चिन्तातुरा:सर्व्वेकामकल्पद्रुमाशिवा ।
जागर्तिभुवनेशानीमणिद्वीपाधिवासिनी १५

हे देवगण ! तुम चिन्ता से कातर क्यों होते हो ? मणि-द्वीप निवासिनी वाञ्छा कल्पतरु रूपिणी भुवनेश्वरी सदा

जागिरत रहती हैं, वह मङ्गल मयी हैं, तुम्हारा मङ्गल विधान करेंगी ॥१५॥

अस्माकमनयादेवतदुपेक्षास्तिनान्यथा ।
शिक्षैवेयंजगन्मात्राकृतास्मच्छिक्षणायच १६

हम लोगों के अपराध से ही वह हमारी शिक्षा के लिये उपेक्षा करती हैं। यह शिक्षा हमारे नाश के निमित्त नहीं है भविष्यत में फिर उसका अपराध न किया जाय, यही उस शिक्षा का उद्देश्य है ॥१६॥

लालनेताडनेमातुर्नाकारुण्यंयथार्भके ।
तद्वदेवजगन्मातुर्नियन्त्र्यागुणदोषयोः ॥१७॥

जिस प्रकार माता अपनी सन्तान का लालन पालन विषय में ताड़ना करती है, किन्तु उस में उसका निष्कारुण्य (निर्दईपना) लक्षित नहीं होता, इसी प्रकार गुण दोष को नियन्त्री जगन्माता का भी इस अखिल सन्तान को शिक्षा के निमित्त ताड़न करना भी निर्दयता नहीं हो सकता ॥१७॥

अपराधोभवत्येवतनयस्यपदेपदे ।
कोऽपरःसहतेलोकेकेवलंमातरंविना ॥१८॥

तस्माद्यूयंपराम्बांतांशरणंयातमाचिरम् ।
निर्व्याजयाचित्तवृत्त्यसावःकार्य्यंविधास्यति ॥

तनय (पुत्र) पद पद पर माता के निकट अपराधी होता है, किन्तु माता के अतिरिक्त अन्य कौन वह अपराध क्षमा

करेगा ? अतएव तुम लोग अचिर (शीघ्र) अहैतु की भक्ति सहित उसी परम जननी के शरणगत होओ, वह तुम्हारा कार्य विधान करेंगी ॥१८—१९॥

इत्यादिश्यसुरान्सर्वान्महाविष्णुःस्वजायया।
संयुतोनिर्जगामाशुदेवैःसहसुराधिपः ॥२०॥

सुरपति महाविष्णु ने देवगणको इसप्रकार से आदेशकर लक्ष्मी सहित मिलित हो देवतागणों के सङ्ग देवीकी आराधनाके लिये शीघ्र गमन किया ॥२०॥

आजगाममहाशैलंहिमवन्तंनगाधिपम् ।
अभवंश्चसुराःसर्वेपुरश्चरणकर्मणः ॥२१॥

और संपूर्णदेवगण महागिरि नगेश्वर हिमालय में आय पुरश्चरण क्रिया में प्रवृत हुए ॥२१॥

अम्बायज्ञविधानज्ञाअम्बायज्ञञ्चचक्रिरे ।
तृतीयादिव्रतान्याशुचक्रुःसर्वेसुरानृप ॥२२॥

हे नृप ? वह अम्बायज्ञवित् देवीभागवत के तृतीय स्कन्धोक्त अम्बायज्ञ और सम्पूर्ण हिमालय के प्रति देवीकर्त्तक उपदिष्ट तृतीयादि व्रत का अनुष्ठान करने लगे ॥२२॥

केचित्समाधिनिष्णाताःकेचिन्नामपरायणाः ।
केचित्सूक्तपराःकेचिन्नामपारायणोत्सुकाः २३
मन्त्रपारायणपराःकेचित्कृच्छ्रादिकारिणः ।
अन्तर्यागपराःकेचित् केचिन्न्यासपरायणाः॥

हृल्लेखयापराशक्तेः पूजांचक्रुरतन्द्रिताः।
इत्येवंबहुवर्षाणि कालोगाज्जनमेजयः २५॥

देवताओं में कोई कोई देवी का ध्यान करते समाधि निष्ठ हुए कोई कोई देवी का नाम जपने लगे, कोई "अहंरुद्रेभिः" इत्यादि देवी सूक्त जप करने मे प्रवृत्त हुए, कोई २ नामोच्चारण और कोई २ मन्त्र जप परायण हुए, कोई कोई कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत का अनुष्ठान करने लगे, कोई कोई अन्तर्याग में प्रवृत्त हुए, कोई २ (तन्त्रोक्त) न्यास करने में प्रवृत्त हुए, और कोई २ अतन्द्रित होकर भुवनेश्वरी के मन्त्र द्वारा उस परमशक्ति की पूजा करने लगे। हे जनमेजय ! इसी प्रकारसे देवतागणों को बहुत दिन व्यतीत होगये २३-२४-२५

अकस्माच्चैत्रमासीय नवम्यांचभृगोर्दिने।
प्रादुर्बभूवपुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् २६॥

अनन्तर चैत के महीने की नवमी तिथि में शुक्रवार के दिन अकस्मात् देवताओं के सन्मुख श्रुति प्रतिपादित वह शाक्तेज (शक्तितेज) प्रादुर्भूत हुआ ॥२६॥

चतुर्दिक्षुचतुर्वेदैर्मूर्त्तिमद्भिरभिष्टुतम्।
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् २७
विद्युतकोटिसमानाभं मरुणंतत्परंमह।
नैवचोर्ध्वंनतिर्य्यक्चनमध्येपरिजग्रभत् २८॥

आद्यन्तरहितंतत्तु नहस्ताद्यङ्गसंयुतम् ।
नचस्त्रीरूपमथवा नपुंरूपमथोभयम् ॥२९॥

अरुणवर्ण † वह परमतेज कोटिविद्युत (करोड़ बिजली) की समान करोड़ सूर्य की समान दीप्ति युक्त और करोड़ चन्द्रमा की समान सुशीतलथा। इसके चारोओर चारों वेद मूर्तिमान होकर इसका स्तव करते थे। वह तेज समूह ऊर्ध्व पार्श्व वा मध्य में परिछिन्न था। वह आदि अन्त रहित था। इसका हस्तादि अङ्ग युक्त स्त्री पुरुष वा नपुंसक का आकार भी नहीं था॥२७-२८-२९॥

दीप्त्याप्रधानंनेत्राणां तेषामासीन्महीपते।
पुनश्चधैर्य्यमालम्ब्य यावत्तेदहशुःसुराः ३०॥
तावत्तदेवस्त्रीरूपेणाभाद्दिव्यंमनोहरम् ।
अतीवरमणीयाङ्गी कुमारींनवयौवनां ३१॥
उद्यत्पीनकुचद्वन्द्व निन्दिताम्भोजकुट्मलाम्
रणत्किङ्किणिकाजालसिञ्जन्मञ्जीरमेखलाम्॥
कनकाङ्गदकेयूर ग्रैवेयकविभूषिताम् ।

† तिस काल महाशक्ति रजोगुण अवलम्बन करके प्रगट हुई थी, इसी कारण देवतागणों ने रक्त वर्ण रूप से देखा "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां" श्रुति इस वाक्यमे रजोगुण का रक्त वर्णत्व प्रतिपादित हुआ है॥

अनर्घ्यमणिसम्भिन्न गलबन्धविराजताम् ३३
तनुकेतकसंराजन्नील भ्रमरकुन्तलाम् ।
नितम्बविम्बसुभगां रोमराजिविराजिताम् ३४
कर्पूरशकलोन्मिश्र ताम्बूलपूरिताननां ।
कनत्कनकताटङ्कविटङ्कबदनाम्बुजाम् ॥ ३५॥
अष्टमोचन्द्रविम्बाभ ललाटामायतभ्रुवम्।
रक्तारविन्दनयनामुन्नसांमधुराधराम् ३६॥
कुन्दकुड्मलदन्ताग्रां मुक्ताहारविराजिताम्।
रत्नसम्भिन्नमुकुटां चन्द्ररेखवतंसिनीम् ३७॥
मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम्
काश्मीरविन्दुनिटिलाम् नेत्रत्रयविलासिनी॥
पाशांकुशवराभीति चतुर्व्वाहुंत्रिलोचनाम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ३९॥

हे राजन् ! देवताओं ने प्रथम तो उस तेज को प्रभा से प्रतिहत होकर नेत्र मूंद लिये, और फिर धैर्य का अवलम्बन करके जभी देवताओं ने देखा उसी समय वह परम तेज दिव्य मनोहर स्त्री रूप से आभासित (प्रकाशित) हुआ। वह स्त्री मनोरमाङ्गी नवयौवना कुमारी थी, उस के पीनोन्नत दोनों कुच कमल कलिका को निंदित करते थे, उस के चारों हाथों में कनक वलय (चूड़ी) चारों बाहों में केयूर ग्रीवा देश में ग्रैवेयक और कण्ठदेश में अमूल्य मणि खचित कण्ठाभरण

शोभायमान था। कटि तट में शब्दायमान किङ्कणी द्वारानूपुर और काञ्ची भूषण शब्दित होते थे अति श्वेत वर्ण लाल केतक पत्र के ऊपर शोभित नील वर्ण भ्रमर की समान कर्ण और कपोल मध्य वर्ती केशराजि शोभा पाती थी, उसके नितम्ब अत्यन्त सुंदर एवं उन्हों ने रोमावली के द्वारा और भी शोभा धारण की थी। उसका मुखमंडल कर्पूरपूर्ण तांबूल से परिपूरित था, और दीप्ति शाली कनक ताटंक से वदन मण्डल ने परम सौन्दर्य धारण किया था, ललाटदेश अर्द्धचन्द्र से सुशोभित था, दोनों भोंए आयत, नेत्र रक्तारविन्द (लाल कमल की समान और नासिका ऊँची थी, अधर विम्ब अति मनोहर, दशनाग्र कुन्द पुष्प के मुकुलकी समान रमणीय और गलदेश में मोतियों का हार विराजमान था, मस्तक पर मणि खचित मुकुट कर्ण में चन्द्र रेखा की समान कर्ण भूषण एवं केशपाश मल्लिका और मालती माला से सुशोभित थे, ललाटदेश सिन्दूर बिंदु से विभूषित था और वह तीन नेत्रों से शोभित थीं, चारों हाथों में पाश, अंकुश, वर, अभय धारिणी व रक्त वस्त्र पहिरे हुए थीं, उसके देह की कान्ति दाड़िम कुसुम की समान शोभा धारण कर रहीथी ॥३०-३९॥

सर्व्वशृङ्गारवेशाढ्यांसर्व्वदेवनमस्कृताम् ।
सर्व्वाशापूरिकांसर्व्वमातरंसर्व्वमोहिनी॥४०॥
प्रसादसुमुखीमम्बांमन्दस्मितमुखाम्बुजाम् ।
अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुःपुरतःसुराः ॥४१॥

अनन्तर देवतागणों ने इसप्रकार सब शृङ्गार वेषधारिणी सर्व कामना पूरिणी (सबकी कामना पूर्ण करनेवाली) समस्त देवगण नमस्कृत्य, सब जगत की माता, अखिल मोहिनी, प्रसाद सुमुखी, स्मेराननी अकपट करुणामय मूर्ति अम्बिका देवी को सन्मुख स्थित देखा ॥४०॥४१॥

दृष्ट्वातांकरुणामूर्तिंप्रणेमुसथलाःसुराः ।
वक्तुंनाशक्नुवन्किञ्चिद्बाष्पसंरुद्धनिःस्वनाः ४२

उस करुणा मूर्तिका दर्शन करतेही देवतागणों ने प्रणाम किया, किन्तु बाष्प मे कंठ रुद्ध होजाने पर कुछ कहने में समर्थ न हुये ॥४२॥

कथञ्चित्स्थैर्यमालम्ब्यभक्त्याचानतकन्धराः ।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्ज्जगदम्बिकां ॥४३॥

फिर अति कष्टसे धैर्यावलम्बन पूर्वक भक्ति सहित ग्रीवा झुकाकर प्रेमाश्रु पूर्ण नयनसे जगदम्बिका का स्तव करने लगे॥

॥ देवाऊचुः ॥

नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः ।
नमःप्रकृत्यैभद्रायै नियताःप्रणताःस्मताम् ४४

देवता बोले, आप द्योतन शील महा देवी और आपही मंगल मयी हैं, आपको नमस्कार है। आपही प्रकृति अर्थात् त्रिगुण की साम्यावस्थायुक्त–मायोपहित ब्रह्मरूपिणी हैं, हम लोग संयत चित्त होकर आपको प्रणाम करते हैं ॥४४॥

तामग्निवर्णांतपसाज्वलन्तीवैरोचनींकर्म्मफलेषुजुष्टां। दुर्गांदेवींशरणमहंप्रपद्येसुतरसितरसेनमः॥४५॥

आपही अग्निको समान अरुण वर्ण. आपही ज्ञान प्रभा से दीप्यमान और आपही चैतन्य रूपसे सर्वत्र प्रतिभात होती हैं, ब्राह्मणगण कर्मफल प्राप्तिके निमित्त आपकी सेवा करते रहते हैं, आपही अष्टाङ्ग योग साध्यज्ञान-गम्य हैं, आपही संसार सागरसे तारनेवाली हैं अतएव हमलोग घोर संसार सागरसे पार होने के लिये आपकी शरणागत होकर आपको नमस्कार करते हैं ॥४५॥

देवींवाचमजनयन्तदेवास्तांविश्वरूपाःपशवोवदन्ति ॥ सानोमन्द्रेषमूर्ज्जंदुहानाधेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥४६॥

प्राणादि पंचवायु की सहायता से जो सब वाक्य उच्चारित होते हैं, उसमेंही पशु स्वरूप अस्मदादि लोक गण उच्चारण करते हैं, यह भाषाही हमारो कामधेनु स्वरूप है अर्थात् हम इसी कामधेनु रूपिणी भाषा से इच्छानुसार धनमान, और अन्नादि दोहन करके अहंकार में मत्त होते हैं। आप वही भाषा स्वरूप हैं, अतएव आप हम लोगों से संस्तुता होकर हमारा इष्ट प्रदान कीजिये ॥४६॥

कालरात्रिंब्रह्मस्तुतांवैष्णवींस्कन्दमातरं ।
सरस्वतीमदितिंदक्षदुहितरंनमामःपावनांशिवां

हे देवि ? आपही सर्व संहारक काल काभी संहार करने वाली हैं मधुकैटभ के वध काल में ब्रह्मा ने आपकी स्तुति करी थी, आपही विष्णु शक्ति लक्ष्मी स्वरूप हैं, आपही स्कन्ध माता शिव शक्ति और आपही ब्रह्मा की शक्ति सर-स्वती रूपिणी हैं, आपही देवगणों की माता आपही दक्ष दुहिता सती नाम से प्रसिद्ध और आपही पवित्र हैं, आपको नमस्कार है ॥४७॥

महालक्ष्म्यैचविद्महेसर्व्वशक्त्यैचधीमहि ।
तन्नोदेवीप्रचोदयात् ॥४८॥

हम लोग आपको महालक्ष्मी रूपसे अवगत हैं और सर्व शक्ति रूपसे ध्यान करते हैं, आप उसी ज्ञान और ध्यानके विषय में हमको प्रेरित कीजिये ॥४८॥

नमोविराट्स्वरूपिण्यैनमःसूत्रात्ममूर्त्तये ।
नमोव्याकृतरूपिण्यैनमःश्रीब्रह्ममूर्त्तये ॥४९॥

आपही विराट् रूपिणी हैं, आपको नमस्कार है, आपही सूत्रात्मा अर्थात् हिरण्यगर्भ रूपिणी हैं आपको नमस्कार है, आपही महदादि षोड़श विकार रूपिणी हैं, आपको नमस्कार है, आपही ब्रह्म रूपिणी हैं, आपको नमस्कार है ॥४९॥

यदज्ञानाज्जगद्भातिरज्जुसर्पस्रगादिवत् ।
यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोतिनुमस्तांभुवनेश्वरीं॥५०॥

जिसप्रकार रज्जु (रस्सी) का ज्ञान होनेसे उसमेंसर्पादि की भ्रान्ति होती है, और रज्जु का ज्ञान होनेसेही सर्पादिक की भ्रान्ति दूर होजाती है, इसीप्रकार जो चैतन्य स्वरूपिणी के अज्ञान वशतः जगत् आभासित होता है, जिसके स्वरूप ज्ञान होनेसे जगत् के स्वरूप का अस्तित्व अनुभूत नहीं हो सकता, उसी भुवनेश्वरी जगदम्बिका का हमस्तव करते हैं५०

नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थंचिदेकरसरूपिणीं ।
अखण्डानन्दरूपांतांवेदतात्पर्य्यभूमिकाम्५१
पञ्चकोशातिरिक्तांतामवस्थात्रयसाक्षिणीं।
पुनस्त्वंपदलक्ष्यार्थंप्रत्यगात्मस्वरूपिणीं ५२

जो चैतन्य रस रूपिणी अर्थात् चैतन्य स्वरूपिणी हैं, अतएव " तत्वमसि " इस महावाक्यस्थ तत् शब्द की प्रतिपाद्य अखण्डानन्द स्वरूपिणी सर्व वेद प्रतिपाद्य स्वरूप हैं,जो अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय, और आनन्दमय, कोष की अतिरिक्त पदार्थ, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था की साक्षि स्वरूपिणी हैं, जो जीवात्मा रूपसे अवस्थित हैं, सुतरां " तत्वमसि " इस महा वाक्यस्थ त्वं पदका लक्षणीय पदार्थ है, उसी भुवनेश्वरी का हमलोग स्तव करते हैं ॥५१॥५२॥

नमःप्रणवरूपायैनमोह्रींकारमूर्त्तये।
नानामन्त्रात्मिकायैतेकरुणायैनमोनमः ५३

आपही प्रणव (ओं) रूपिणी हैं, आपको नमस्कार है, आपही ह्रीं वीज मूर्त्ति हैं, आपको नमस्कार है, आपही बिबिधि मंत्र स्वरूपिणी और करुणामयी हैं आपको वारम्वार नमस्कार है॥५३॥

इतिस्तुतातदादेवैर्म्मणिद्वीपाधिबासिनी।
प्राहवाचोमधुरयामत्तकोकिलनिःस्वना॥५४॥

देवताओं के मणि द्वीप निवासिनी भुवनेश्वरी का इस प्रकार स्तव करनेपर, मत्त कोकिल को समान मधुर ध्वनि देवी मधुर बचनसे कहने लगी॥५४॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

वदन्तुबिबुधाःकार्य्यंयदर्थमिहसङ्गताः।
बरदाहंसदाभक्तकामकल्पद्रुमास्मिच॥५५॥

हे देवतागण! तुम संपूर्ण जिस निमित्त इस स्थान में आये हो, सो कहो, मैं सदाही भक्त वांछा कल्पतरु और वर देनेवाली हूं, तुम्हारी वांछा अवश्य पूर्ण होगी॥५५॥

तिष्ठन्त्यांमयिकाचिंतायुष्माकंभक्तिशालिनां। समुद्धरामिमद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात्॥
इतिप्रतिज्ञांमेसत्यांजानीथविबुधोत्तमाः ५६

तुमलोग भक्तिशाली हो, सुतरां (भक्त बांछा कल्पतरु) मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या चिन्ता है ? हे देवगण ? मैं अपने भक्तगणों को दुःखरूपी संसार सागरसे उद्धार करती हूं, इसको मेरी सत्य प्रतिज्ञा जानो ॥५६॥

इतिप्रेमाकुलांवाणींश्रुत्वासन्तुष्टमानसाः ।
निर्भयानिर्ज्जराराजन्नूचुर्दुःखंस्वकीयकम् ५७

हे राजन् ? जन्मेजय ? देवता गण देवी के इसप्रकार प्रेम पूर्ण बाक्य श्रवणकर अतिशय हृष्ट चित्त हुये और निर्भय होकर अपना दुःख निवेदन करने लगे ॥५७॥

॥ देवाऊचुः ॥

नाज्ञातंकिंचिदप्यत्रभवत्यास्तिजगत्त्रये ।
सर्व्वज्ञयासर्व्वसाक्षिरूपिण्यापरमेश्वरि॥५८॥

देवताओं ने कहा हे परमेश्वरी ? आप सर्वज्ञ और संपूर्ण ब्रह्माण्ड की साक्षिस्वरूपिणी हैं, अतएव कुछ आपसे छिपा नहीं अर्थात् आप सब बातसे ज्ञात हो ॥५८॥

तारकेणासुरेन्द्रेणपीड़िताःस्मोदिवानिशम् ।
शिवाङ्गजाद्वधस्तस्यनिर्म्मितोब्रह्मणाशिवे५९

हे शिवे ? तारक नामक असुरेन्द्र दिनरात हमको पीड़ित करता है (और हमलोग उसका कुछभी प्रतीकार करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि) ब्रह्माने शिव के और सजात पुत्र से उसका विनाश निर्दिष्ट किया है ॥५९॥

शिवाङ्गनातुनैवास्तिजानासित्वंमहेश्वरि ।
सर्व्वज्ञपुरतःकिम्वा वक्तव्यंपामरैर्ज्जनैः ६०॥

हे महेश्वरि ? सम्प्रति शिवाङ्गनाने देह परित्याग कियाहै (सुतरां हमारे दुःख दूर होनेका कोई उपाय नहीं है) आप सर्वज्ञ हैं, सभी आपको विदित है, आपके निकट हम पामर गण क्या कहैं ॥६०॥

एतदुद्देशतःप्रोक्तमपरंतर्कयाम्बिके ।
सर्व्वदोचरणाम्भोजेभक्तिस्यात्तवनिश्चला ६१
प्रार्थनीयमिदंमुख्य मपरंदेहहेतवे ॥६२॥

हमने संक्षेप से यह दुःख बृतान्त निवेदन किया। आप सर्वज्ञ हैं, अन्य समस्त दुःख जानसकती हैं,। अधिक क्या कहैं, तुम्हारे चरणकमलों में सदाही अविचलभक्ति रहै,यही हमारा मुख्य प्रार्थनीय विषय है, और शिव–सुतोत्पत्ति के निमित्त आप देह धारण कीजिये, यह भी अपर प्रार्थनीय है ॥६१॥६२॥

इतितेषांवचःश्रुत्वा प्रोवाचपरमेश्वरि ।
ममशक्तिस्तुयागौरी भविष्यतिहिमालये६३
शिवायसाप्रदेयास्यात् सावःकार्य्यंविधास्यति
भक्तिर्म्ममचरणांभोजे भूयादयुष्माकमादरात्

परमेश्वरी ने देवतागणों का इसप्रकार वचन सुनकर कहा कि हमारी जो शक्ति हिमालय में गौरी रूपसे प्रगट होगी,

वहां शिवके निकट भेदेया अर्थात् शिवानी होकर पुत्रोत्पत्ति पूर्वक तद्द्वारा तारकासुर बधरूप तुम्हारा कार्य्य सम्पन्न करेगी । किन्तु मेरे चरणकमलों में तुम्हारी अतिशय भक्ति होवे ॥६३॥६४॥

हिमालयोहिमनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः
ततस्तस्यगृहेजन्म मम प्रियकरंमतं ॥६५॥

तुम्हारी समान हिमालयभी मेरी अत्यन्त भक्ति पूर्ण मन से उपासना करता है, अतएव उसके गृहमें मेरा जन्म अत्यन्त प्रियकर जानो ॥६५॥

॥ व्यास उवाच ॥

हिमलयोऽपितच्छ्रुत्वा त्यनुग्रहकरंवचः ।
वाष्पैसंरुद्धकण्ठाक्षोमहाराज्ञींवचोऽब्रवीत ६६

व्यासजी ने कहा हे राजन् ? हिमालय उनका अनुग्रह सूचक इस प्रकार वाक्य श्रवणकर वाष्परुद्ध कंठ हो अश्रुपूर्ण नयन से राज राजेश्वरी के प्रति कहने लगा ॥६६॥

महत्तरंतंकरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि ।
नोचेतक्काहंजडःस्थाणुःक्वत्वंसच्चित्स्वरूपिणी

हे देवि ? आप जिसपर अनुग्रह प्रकाश करती हैं, उस व्यक्ति को अतिशय महान करदेती हो, नहीं तो सच्चिदानंद रूपिणी आपको पुत्री रूपसे लाभ करना जड़ पर्वत स्वरूप मेरे पक्षमें असंभव है ॥६७॥

असम्भाव्यंजन्मशतैस्त्वत्पितृत्वंममानघे ।
अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वातत्साधिजैः ६८

हे निर्मल ? मैंने आपके अनुग्रह सेही आपका पितृत्व लाभ किया, नहीं तो अनन्त जन्म संचित अश्वमेधादि याग जनित पुण्य वा समाधिज पुण्य द्वारा इसको लाभ करना मेरे पक्ष में संभव नहीं है ॥६८॥

अद्यप्रपञ्चेकीर्त्तिः स्याज्जगन्मातासुताभवत्
अहोहिमालयस्यास्य धन्योऽसौभाग्यवानिति

अहो ! मैं धन्य और भाग्यवान हुआ । अद्य से अनन्त ब्रह्मान्ड में "जगन्माता ने हिमालय की पुत्रीरूप से जन्म ग्रहण किया था" यह कीर्ति रूप से विराजित रहेगा ॥६९॥

यस्यास्तुजठरेसन्ति ब्रह्माण्डानाञ्चकोटयः।
सैवयस्यसुताजाता कोवास्यात्तत्समोभुवि७०

जिसके जठर गहवर में करोड़ ब्रह्माण्ड विराजितहैं, वह जिसके पुत्री रूप से जन्म ग्रहण करै, उसकी समान भागवान व्यक्ति और कौन है ॥७०॥

जानेऽस्मत्पितृणांकिं स्थानंस्यान्निर्म्मितंपरं।
एतादृशानांवासाय येषांबंशेऽस्तिमादृशः ७१

जिनके वंश में मेरी समान व्यक्ति ने जन्म लिया है,

उसके अस्मत् पितृगणों के वासार्थ किसप्रकार के परमोत्कृष्ट स्थान बने हैं, सो मैं नहीं कह सकता ॥७१॥

इदंयथाचदत्तम्मे कृपयापूर्णप्रेमया।
सर्व्ववेदान्तसिद्धञ्च त्वद्रूपंब्रूहिमेतथा ॥७२॥

आपने प्रेम पूर्ण हो कृपा पूर्वक जिस प्रकार स्वीय पितृत्व प्रदान किया है इसीप्रकार सर्व वेदान्त प्रसिद्ध अपने स्वरूप का मेरे निकट कीर्त्तन कीजिये ॥७२॥

योगश्चभक्तिसहितं ज्ञानञ्चश्रुतिसम्मतं।
वदस्वपरमेशानि! त्वमेवाहंयतोभवे: ॥७३॥

हे परमेश्वरि? इसके अतिरिक्त मेरे निकट श्रुति सम्मत भक्ति योग और ज्ञान योग भी कहिये। जिसके सुनने से मैं आपके सङ्ग अभिन्नता लाभ करने में समर्थहोऊँ अर्थात् आप में ही मिलजाऊँ ॥७३॥

॥ व्यासउवाच ॥

इतितस्यवच:श्रुत्वा प्रसन्नमुखपङ्कजा।
वक्तुमारभताम्बासा रहस्यंश्रुतिगूहितं ७४॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टादशसहस्त्रयां संहितायांवैयासिक्यांसप्तमस्कंधेदेवीगीतायां हिमालयगृहेपार्व्वत्या जन्मकथनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्याय: ॥१॥

व्यास जीने कहा, जगदम्बा ने हिमालय का इस प्रकार वचन सुनकर प्रसन्न मुख से श्रुति गुह्य रहस्य कहना आरम्भ किया ॥७४॥

इतिश्रीदेवीगीतापण्डितकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकासहित हिमालयगृह पार्वतीजन्मकथननामक प्रथमोऽध्यायसमाप्त ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

शृण्वन्तुनिर्ज्जरासर्वे व्याहरन्त्यावचोमम ।
यस्यश्रवणमात्रेण मद्रूपत्वंप्रपद्यते ॥१॥

देवीने कहा—हे देवगण ? जिस के श्रवण मात्र सेही जीवगण मेरा स्वरूपत्व लाभ कर सक्ताहै, वही विषय वर्णन करती हूं तुम लोग श्रवण करो ॥१॥

अहमेवासपूर्व्वन्तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप ।
तदात्मरूपंचित्सम्वित् परब्रह्मैकनामकं ॥२॥

हे गिरिवर सृष्टि के पहिले केवल मैंही विद्यमानथी, मेरे आत्म स्वरूप को चित् सम्वित और परब्रह्म कहकर निर्देश करते हैं ॥२॥

अप्रतर्क्यमनिर्द्देश्य मनोपम्यमनामयम। तस्य काचित्स्वतःसिद्धा शक्तिर्म्मायेतिविश्रुता ॥

वही सर्व वेद प्रतिपाद्य आत्म स्वरूप श्रुति गोचर पदार्थ है वह अनुमानादि प्रमाण विषय है परन्तु श्रुति और आत्म पदार्थ को जाति गुण क्रिया और संज्ञादि द्वारा निर्देश में सामर्थ नहीं है इसी से आत्म तत्व अनिर्देश्य है और तिसकी समान द्वितीय पदार्थ के अभाव से उपमा रहित और जन्म मरणादि षड्भाव विकार शून्य पदार्थ है इस आत्माकी स्वतः सिद्धा एक शक्ति है वह माया नाम से विख्यात है ॥३॥

नसतीसानासतीसानो भयात्माविरोधतः ।
एतद्विलक्षणाकाचित् वस्तुभूतास्तिसर्व्वदा ४

अब इस माया के स्वरूप का वर्णन करती हू श्रवणकरो, माया ब्रह्म की समान तीन काल वर्त्तिनी है क्योंकि आत्म ज्ञान होने सेही इसका लय होजाता है और बन्ध्या पुत्र की समान असत् पदार्थ भी नहीं है कारण कि जगदुपादान रूप से सदाहो इसकी सत्ता अनुभूत होतीहै । किन्तु इसको सत्वा सत्व विशिष्ट वस्तु कहकर भी स्वीकार नहीं किया जासकता कारण कि सत्वासत्वरूप विरुद्ध धर्म एक द्रव्य में एक समय नहीं रह सकता। अतएव सत्व असत्व और सत्वासत्व से विलक्षण कोई अनिर्वचनीय अनादि वस्तु माया नाम से विख्यात है ॥४॥

पावकस्योष्णतेवेय मुष्णांशोरिवदीधितिः।
चन्द्रस्यचन्द्रिकेवेयं ममेयंसहजाध्रुवा ॥५॥

जिसप्रकार अग्नि को उष्णता, सूर्य की मरीचि (किरणें) और चन्द्र की ज्योत्स्ना तिनसेही उत्पन्न है, ऐसेही माया भी आत्मा को सहजा (संगिनी) और मोक्षपर्य्यंतस्थायिनीहै

तस्यांकर्म्माणिजीवानां जीवाःकालाश्चसञ्चरे।
अभेदेनविलीनाःस्यु सुषुप्तौव्यवहारवत् ॥६॥

जिस प्रकार दैनन्दित सुषुप्ति अवस्था में कर्मादि समस्त विलीन अवस्था में रहते है, तिसीप्रकार प्रलय काल में जीव का कर्म, जीव और काल यह माया में लीन होजाते हैं, तदुपरान्त प्रलय के अवसान (अन्त) में जीवों के कर्मानुसार मैं नाना प्रकार के उत्कृष्ट अपकृष्ट फल प्रदान करती हूं। संपूर्ण जीव कर्म के वशहो इसप्रकार उत्कृष्ट अपकृष्ट फल के भोगी होते हैं, अतएव हमारा कोई वैषम्यादि दोष नहीं है ॥६॥

स्वशक्तेश्चसमायोगा दहंबीजात्मतांगता।
स्वाधारावरणात्तस्य दोषत्वञ्चसमागतं ॥७॥

मैं निर्गुण होकर भी तादृशी माया के संयोग से जगत् के कारणत्व को प्राप्त होती हूं, किन्तु यहमायाही अविद्या शक्ति द्वारा आत्मा को आवृत करने से माया में स्वाश्रय व्यामोहकता दोष विद्यमान रहता है ॥७॥

चैतन्यस्यसमायोगा न्निमित्तत्वञ्चकथ्यते।
प्रपञ्चपरिणामाच्च समवाइत्वमुच्यते ॥८॥

प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध मेंही उपादान और निमित्त भेद मं द्विविध कारण दिखाई देते हैं अतएव तुम एकाकिनी को किसप्रकार जगत् का उपादान और निमित्त कारणता प्राप्त होगी इस अपत्ति में कहतो हूं मेरी मायाशक्ति चैतन्य संयोग से जगत् निर्माण करती है अतएव मेरा चैतन्यही जगत् का निमित्त कारण है और मेरी मायाशक्ति प्रपञ्च रूपमें परिणत होकर जगत् निर्म्माण करती है अतएव मायाही जगत् की समवायी वा उपादान कारण है। इस प्रकार से एक मैं ही दो अंशों के द्वारा जगत् के निमित्त और उपादान कारण रूप से वर्त्तमान रहती हूं ॥८॥

केचित्तांतपइत्याहुस्तमःकेचिज्जडंपरे ।
ज्ञानंमायांप्रधानञ्च प्रकृतिंशक्तिमप्यजां ॥९॥
विमर्शइतितांप्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ।
अविद्यामितरेप्राहुर्व्वेदतत्वार्थचिन्तकाः १०॥

मेरी उसी माया को कोई कोई वेद विद्गण तप कहते हैं कोई कोई तम, अपर कोई कोई जड़ और कोई ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति, शक्ति और अजा नाम से अभिहित करते हैं और शैव शास्त्रवित् पण्डितगण उसको विमर्श और वेदतत्वाभिज्ञ मानिषी (मानिप) गण अविद्या कहकर निर्देश करते हैं१०

एवंनानाविधानिस्युर्नामानिनिगमादिषु । त-
स्याजड़त्वंदृश्यत्वाज् ज्ञाननाशाऽत्ततोसतो ॥

विष्णुग्रन्थिंततोभित्वा रुद्रग्रन्थिन्ततिष्ठति ।
ततस्तुकुम्भकेगाढे पूरयित्वापुनःपुनः ॥९१॥

फिर विष्णु ग्रन्थिभेद करके रुद्र ग्रन्थि विभेदन पूर्वक अवस्थिति करनी चाहिये । फिर वारंवार गाढ़तर कुंभक का अभ्यास करै ॥९१॥

एवंनित्यमभ्यसेच्च स्याच्चतुष्टयकुम्भकं ।
वन्धत्रयेणसंयुक्तः केवलंप्राप्तिकारकः ॥
अथास्यलक्षणंसम्यक् कथयामिसमासतः९२

इस प्रकार नित्य अभ्यास से क्रमानुसार चार कुंभक का अभ्यास होता है, तव तीनवंधन संयुक्त होकर केवल उद्देश साधन का प्राप्ति कारक होता है । अब मैं विस्तार पूर्वक इसके लक्षण का विषय कहता हूं ॥९२॥

एकाकिनासमुपगम्यविविक्तदेशंप्राणादिरूप
ममृतंपरमार्थतत्वं । लम्बाशिनीधृतिमतापरिभावितव्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयं९३

जो व्यक्ति योगी है, उसको धैर्यावलम्बन पूर्वक प्रथम निर्जन प्रदेश आश्रय करना चाहिये फिर प्राणादि रूप अमृत पान करके परमार्थ तत्वको चिन्ता करनी कर्त्तव्य है तिसकाल दीर्घ कालतक जीवन धारणोपयोगी आहार वृत्ति ग्रहण करनी चाहिये, यथार्थ कहा गया है, परमार्थ तत्व संसार रोग के लिये अद्वितीय औषधी है ॥९३॥

सर्व्वनाड्यासमाकृष्य वायुमभ्यासयोगिनां
विधिवत्कुम्भकंकृत्वा रेचयेत्शीतरश्मिता ॥

जो अभ्यास के वल से योगी है, उसको नाड़ी आकर्षण पूर्वक वायु ग्रहण करनी चाहिये। फिर विधि पूर्वक कुंभक का अनुष्ठान करके शीतल किरणों के संयोगमें रेचक क्रियाकरै॥

उदरेवातदोषघ्नं कण्ठदोषंनिहन्तिच ।
मुहुर्मुहुरिदंकार्य्यं सूर्य्यभेदमुदाहृतं ॥९५॥

इस कार्य के द्वारा उदर की वायु और कण्ठ दोष का विनाश होता है। यथार्थ कहा जाता है यह कार्य वारंवार करना चाहिये, इसकाही नाम सूर्य भेद है ॥९५॥

नाड़ीभ्यांवायुमाकृष्य कुण्डल्याःपार्श्वयोर्नरः
धारयेदुदरेसोऽपि रेचयेदिडयासुधीः ॥९६॥

जो व्यक्ति बुद्धिमान है, नाड़ी समूह के द्वारा वायु आकर्षण पूर्वक इनकी सहायता से कुण्डलिनी के पार्श्व मे और उदर में धारण करना उनका कर्त्तव्य है ॥९६॥

कण्ठकफादिदोषघ्नं शरीराग्निविवर्द्धनं ।
शिरोजलोदधारातु गतरोगविनाशनं ॥९७॥

इसके प्रभाव से कण्ठमें कफका अधिकार नष्ट, शरीर का तेज वर्द्धित मस्तक स्निग्ध और सब रोग निवारित होते हैं॥

गच्छतस्तिष्ठतःकार्य्यं उज्जयाख्यन्तुकुम्भकं।

मुखेनवायुसंगृह्य प्राणारन्ध्रेविरेचयेत् ॥९८॥

योगी व्यक्ति क्यास्थिति क्या गमन क्योंन करै, उसको उज्जय नामक कुंभक का अनुष्ठान करना चाहिये, इसकार्य में मुख द्वारा वायु ग्रहण पूर्वक प्राण रन्ध्र में बिरेचन करने का नियम है ॥९८॥

शीतलीकरणांचेदं हन्तिपित्तंतथाज्वरं ।
स्तनयोरथभस्त्रेव लोहकारस्यवेगतः ॥९९॥

इसका नाम स्निग्धि करण है और इसके द्वारा पित्त कोप और ज्वर कोप नष्ट होता है, कर्मकार जिस प्रकार बेग सहित रथभस्त्रा की शक्ति चालित करके शब्दित करते हैं यह भी इसी प्रकार है ॥९९॥

रेचयेत्पूरयेत्वायु माश्रमंदेहगंधिया ।
यदाश्रमोभवेद्देहे तथासूर्य्येणरेचयेत् ॥१००॥

चतुरयोगी को अपने देहाश्रम में रेचक और पूरक का कार्य करना चाहिये और सूर्य के सहित रेचक का अनुष्ठान करनाही विधि है ॥१००॥

कण्ठसंकोचनंकृत्वा पुनश्चन्द्रेणरेचयेत् ।
वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्द्धनं ॥१०१

तदनन्तर कंठका संकोच करके चन्द्रके सहित रेचक करनी चाहिये, इसके द्वारा वात पित्त और कफ की शक्ति शान्त होती है और शरीर की अग्नि बढ़ती है ॥१०१॥

कुण्डलीवोधकंवक्त भावहनंसुखदंशुभं ।
ब्रह्मनारीसुखंसंस्थ्यं कफाद्यर्गलनाशनं॥१०२

यदि कुण्डली का रोध होतो वक्रभाव दूरीभूत सुख और स्वास्थ अधिकृत होता है और कफादिक की कोई मति बंधकता नहीं रहती ॥१०२॥

सम्यक्गात्रसमुद्भूत ग्रान्थित्रयविभेदकं ।
विमेणैवकर्त्तव्यं भस्त्रोख्यंकुम्भकन्तुदं १०३

विशेष प्रकार से भस्त्र नामक कुंभक का अनुष्ठान करना चाहिये, इसके द्वारा शरोत्पन्न तीनों ग्रन्थिका बिभेद होता है ॥

चतुर्णामपिभेदानां कुम्भकेसमुपस्थिते ।
वन्धत्रयमिदंकार्य्यं वक्ष्यमाणांमयास्फुटं १०४

चार भेद विषय में कुम्भक का आविर्भाव हुआ है, मैं तुम्हारे निकट स्पष्ट भाव से जो कहता हूं इन्हीं तीन वंधन का अनुष्ठान करना चाहिये ॥१०४॥

प्रथमोमूलवन्धस्तु द्वितीयउड्डियानकः ।
जालन्धरस्तृतीयस्तु लक्षणंकथयाम्यहं १०५

प्रथम मूलबंध, द्वितीय उड्डीयान और तृतीय जालन्धर नामसे परिचित है, मैं क्रमानुसार इनका लक्षण वर्णन करताहूं ॥

योनिपाष्र्याांतुसंपीड्य वायुमाकुञ्चयेद्वलात् ।
वारंवारंतथाचोर्द्धं समायातिसमीरणः १०६

पार्ष्णिदेश (पैरका तलुआ) द्वारा योनि को निपीडित करके वल पूर्वक वायुको आकुञ्चित करना । इस प्रकार करनेसे वायु वारंवार अर्द्ध में प्रसर गति होती है ॥१०६॥

प्राणापानंनादविन्दु मूलवन्धेनचैकतां ।
गत्वायोगस्यसंसिद्धिं यच्छतेनात्रसंशयः १०७

मूलवंध द्वारा प्राण और अपान के सहित जो नादबिन्दु मिलित होता है, उस में निःसन्देह योगी को सिद्धावस्था होती है ॥१०७॥

कुम्भकास्तेरेचकान्ते कर्त्तव्यस्तूड्डियानकः ।
वद्धोयेनसुषुम्नायां प्राणास्तूड्डियतेततः १०८

रेचक और कुंभक के अन्त में उड्डियान नामक बंधन का अनुष्ठान करना चाहिये, यह सुषुम्ना में वद्ध होने से प्राण को उड्डीन दशामें होती है ॥१०८॥

तस्मादुड्डियानाख्योऽहं योगिभिःसमुदाहृतः
उड्डियानस्तुसहजं गुरुणाकथितंमुदा ॥१०९॥

योगीगण इसका नाम उड्डीयान कहते हैं, गुरु प्रसन्न मनसे इसकाही स्वाभाविक गुण गरिमा वर्णन करते हैं १०९

अभ्यासादस्वतन्त्रस्तु वृद्धोऽपितरुणायते ।
नाभेरुर्द्धमधश्चापि प्राणंकुर्य्यात्प्रयत्नतः ११०

वास्तविक अभ्यास होनेसे इसके द्वारा स्वतंत्रता लाभ

होतो है, अन्यबात क्याहै, इसकी शक्ति से वृद्धभी नवीन भाव धारण करता है। जोहो, सर्व प्रयत्न से प्राण को नाड़ी के अर्द्ध औंर अधोदेश में स्थापन करना चाहिये ॥११०॥

षन्मासमभ्यसेन्मृत्यु ञ्जयत्येवनसंशयः ।
पूरकान्तेतिकर्त्तव्यो वन्धोजालन्धराभिधः ॥

अधिक क्या कहूं यदि इस प्रकार के अभ्यास से छैमास पर्यन्त कार्य किया जायतो जीवमृत्यु को जीतसकता है जोहो पूरक के अन्त में जालन्धर नामक बंधन का अनुष्ठान करना चाहिये ॥१११॥

कण्ठसंकोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः ।
कण्ठमाकुञ्च्यहृदये स्थापयेद्दृढमिच्छया ॥

यह बंधन कंठ शक्ति का संकोचक और वायु पथ निरोधक है कंठको आकुञ्चन करके हृदय में रक्षा करनाही दृढ़ताभिलाषी योगी का कार्य है ॥११२॥

वन्धोजालन्धराख्योऽय ममृताव्ययकारकः
अधस्तात्कुञ्चनेनाशु कण्ठसंकोचनेनच११३
मध्यमाभ्रमणेनस्यात् सप्राणोब्रह्मनाडिगः
वज्रासनस्थितोयोगीचालयित्वातुकुण्डलीं ॥

यह जालन्धर नामक बंधनही अव्यय और अमृत दायक है, अधःस्थान कुंचन और कंठ संकोचन द्वारा मध्यमा भ्रमण

होनेसे प्राणका ब्रह्म नाड़ी में गमन होता है और इस समय योगी कुण्डली को चालित करके वज्रासन पर आसीन होतेहैं ॥

सुषुम्नयातथाभ्यासात् सततंवायुनाभवेत्।
रुद्रग्रन्थिंततोभित्वा सैवयातिशिवात्मकं११५

इस प्रकार अभ्यास बलसे सुषुम्ना के संयोग में वायु के सहित संमिश्रवाण होता है तदनन्तर रुद्र ग्रन्थि विभेदन पूर्वक शिवात्मकता प्राप्त होती है ॥११५॥

चन्द्रसूर्य्यौसमौकृत्वा तयोर्यौगःप्रवर्त्तते ।
गुणात्रयादतीतःस्यात् ग्रन्थिंत्रयविभेदकः ॥

तिस काल चन्द्र सूर्य को समान जानकर योग प्रवर्त्तना होती है, इसमें तीनों गुण अतीत होकर तीन ग्रन्थि का विभेद होता है ॥११६॥

शिवशक्तिसमायोगात् जायतेपरमास्थितिः
यथाकरीकरेणैव पानीयंप्रथिवेत्तथा ॥११७॥

तदनन्तर शिवशक्ति के संयोग में हाथी जिस प्रकार अपनी कर अर्थात् शुण्ड के द्वारा पानीय जल ग्रहण पूर्वक पान करता है इसी प्रकार जीवकी परम पदमें स्थिति होती है ११७

सुषुम्नायास्थितःसर्व्वे सूत्रेमणिगणाइव ।
मोक्षमार्गेप्रसिद्धासा सुषुम्नाविश्वधारिणी११८

यथार्थ विवेचना करके देखने से सूत्रमें जिस प्रकार मणि

माला आवद्ध है, इसी प्रकार सुषुम्ना में संपूर्ण अवस्थित है यह विश्व संसार को भरण कर रही है और यही मोक्षमार्ग की प्रसिद्ध शक्ति है ॥११८॥

यत्रवैनिर्ज्जितःकाल श्चन्द्रसूर्य्यनिवन्धनात्
श्चापूर्य्यकुम्भितोमायु र्व्वहिर्नैयातिसाधके ॥

इसके प्रभाव से चन्द्र सूर्य की समता प्रयुक्त काल शक्ति पराजित होती है, वास्तव में यदि पूर्ण स्वरूप वायुको स्तम्भित किया जाय, तो वह साधक के वहिर्देश में प्रादुर्भूत नहीं होसकती ॥११९॥

पुनःपुनस्तद्वदेतत् पश्चिमद्वारलक्षणम् ।
परितस्तुनवद्वारैरीषत्कुम्भकतांगताः १२०॥

इस रीति से वारम्वार इस प्रकार पश्चिमद्वार स्वरूप वायु का कार्य होता है जब यह सर्वतः नव द्वार में व्याप्त हो, तभी कुंभक होता है ॥१२०॥

प्रविशेत्सर्व्वगात्रेषु वायुःपश्चिममार्गतः ।
रेचकेक्षयितांयाते पूर्ववत्शोधयेत्सदा १२१॥

जव पश्चिम यथानुसार वायु सब शरीर में प्रविष्ट हो, तव रेचक की क्षीण दशा होती है, तिस काल पूरक की सहायता से शोधन करना चाहिये ॥१२१॥

गुरुप्रसादात्मरुदेव साधितस्तेनैवचित्तं प

वनेनसाधितम् । सएवयोगीजितेन्द्रियःसुखी मूढानजानन्तिकुतर्कवादिनः ॥१२२॥

गुरु देव की प्रसन्नता में वायु का कार्य साधित होता है, और उस के द्वारा परिष्कृत होता है, जो इस में क्षमवान् होते हैं, वही योगि जितेन्द्रिय और सुखी हो सकते, वास्तविक कुतर्क निपुण अज्ञान व्यक्ति इस का गर्भ नहीं जान सकता॥

चित्तंहिनष्टंयदिमरुतेस्यात् तत्रप्रतीतोमरु तोऽपिनाशः । नचेतयदिस्यात्नतुतस्यशास्त्रं नात्माप्रतीतिर्नगुरुर्नमोक्षः ॥१२३॥

यदि वायु की शक्ति चित्त विनष्ट हो, तो जानना चाहिये कि इसके संग वायु का भी विनाश हुआ यदि इसके अन्यथा हो, तो शास्त्र सिद्धान्त, आत्म प्रतीति, गुरुपदेश और मोक्ष प्राप्ति यह सब निष्फल हुई जाती है ॥१२३॥

तुम्बिकारुधिरंयद्व द्वलादाकर्षतिध्रुवम् । ब्रह्मनाडीतथाधातून सततभ्यासयोगतः॥

वल पूर्वक आकर्षण करनेपर जिस प्रकार तुम्बीफल शो- णित की समान चिह्न प्रादुर्भूत होते हैं, इसी प्रकार अभ्यास द्वारा सदा ब्रह्मनाड़ी धातु समूह को आकर्षण करतीहै १२४॥

अनेनाभ्यासयोगेन नित्यमासनवन्धतः । चित्तंविलीनतामेतिविन्दुर्नोपात्यधस्तथा ॥

इस प्रकार आसन बंधन और अभ्यास योग द्वारा चित्त लव दशा होती है, किन्तु विन्दु की अधोगति नहींहोती१२५

रेचकंपूरकंकृत्वा वायुनास्थियतेचिरम्।
नानानदी:प्रवर्त्तन्ते संस्रवेचन्द्रमण्डलं१२६॥

रेचक और पूरक का कार्य करने से वायु चिरकाल स्थिर भाव धारण करती है तब प्रकार के नद नदी प्रवर्तित होते हैं, और उन से चन्द्र मण्डल पर्यन्त सिद्ध होता है ॥१२६॥

नश्यन्तिक्षुत्पिपासाद्या:सर्व्वेदोषास्तथासदा।
स्वरूपेसच्चिदानन्दे स्थितिमाप्नोतिकेवलम्॥

तिस काल योगी को क्षुधा का उद्वेग वा तृष्णा (प्यास) का अधिकार नहीं रहता तब केवल वह महात्मा सुख पूर्वक सच्चिदानन्द स्वरूप में अवस्थिति करते हैं ॥१२७॥

कथितन्तुतवप्रीत्या एतदभ्यासलक्षणम्।
मण्डोहटोलयोराजा योगेऽन्तर्भूमिकाक्रमात्

हे सुन्दरी मैंने तुम्हारी प्रसन्नता के लिये यह अभ्यास लक्षण प्रसंग का वर्णन किया। अब यथा क्रम से योग के परवर्त्ती भूमि का सब मंत्र हठ, लय और राजयोग का विषय कहा जायगा ॥१२८॥

एकएवचतुर्थायां महायोगोऽभिधीयते १२९॥

पूर्वोक्त चार में एकभी महायोग कहकर उक्त हुआहै१२९

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

कथयेदंमहादेव योगतत्वंचतुर्व्विधम् ।
भूमिकांशानुसारेण यथाभूतंक्रमान्मम १३०॥

देवी ने कहा हे महादेव ? आपने भूमिका के अंशानुक्रम मे जो चार प्रकार के योग की कथा कही वह यथा क्रम से मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥१३०॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

सकारेणवहिर्याति हकारेणविशेत्महत् ।
हंसहंसेतिमन्त्रोऽयं सर्व्वेजीवाजपन्तितम् १३१

ईश्वर ने कहा सकार वर्ण में वाहर प्रकाश और हकार में अन्तर प्रवेश होता है, जोवगण इसकोही लेकर "हंस" इस मंत्र में जप करते हैं ॥१३१॥

गुरुवाक्यात्सुषुम्नायां विपरीताभयेज्जपः
सोऽहंसोऽहंमितिप्राप्तोमन्त्रयोगःसउच्यते १३२

गुरु वाक्योनुसार जव सुषुम्ना में "सोऽहं" इस मंत्र के विपरीत जप क्रिया होतीहै तभी वह मन्त्र योग रूपमेंकीर्त्तित होता है ॥१२३॥

प्रतीतिर्व्वायुयोगाच्च जायतेपश्चमेपथि ।
हकारेणतुसूर्य्योऽसौ टकारेणेन्दुरुच्यते १३३॥

सूर्य्यचन्द्रमसौरैक्यं हठइत्यभिधीयते ।
हठेनग्रस्यतेजाड्यं सर्व्वदोषसमुद्भवम् १३४॥

वायु योग निबंधन पश्चिम पथ में प्रतीत होता है, हकार अन्य कुछ नहींहै, वह सूर्य और ठकार इन्द्र पूर्त्ति है, जब सूर्य चन्द्र की एकता होती है, तभी वह हठ योग नाम धारण करता है, इस योग के द्वारा सर्व दोषाकर समस्त जड़ता नष्ट हो जाती है ॥१३३।१३४॥

क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ तयोरैक्यंसदाभवेत् ।
तदैकेसाधितेदेवि चित्तंयातिविलीनताम्१३५॥

जब क्षेत्रज्ञ पुरुष परमात्मा में इसका एकभाव कर सकतेहैं हे देवि ? उसी समय चित्त भी विलीन होजाता है ॥१३५॥

पवनस्थैर्य्यमायातिलययोगोदयोसति ।
लयात्सम्प्राप्यतेसौख्यं स्वात्मानन्दपरंपदम्॥

लय योग होने से पवन का स्पन्दन नहीं रहता, अधिक क्या कहूं, इस लय से सुख और स्वकीय परमानन्द अनुभूत होता है ॥१३६॥

अणिमादिपदंप्राप्ते राजतेराजयोगतः ।
प्राणापानसमायोगे ज्ञेयंयोगाच्चतुष्टयं ॥
क्षेपात्कथितंदेविनान्यथासमभाषितम्१३७

अणिमापद प्राप्त होने से राज योग अणुभूत होता है, प्राण और अपान के संयोग में इस चतुर्विध (चार प्रकार के)

मैं प्राणाभिमानिनी होकर जो प्रवेश करती हूं. इस निमित्त ही लोकान्तर गति होती है, नही तो व्यापिका-मेरा लोकान्तर गमन किसप्रकार से संभव होसकताहै ? वास्तविक कल्प में प्राणकाही परलोक गमनादि होता है। आकाश जिस प्रकार एक होकर भी घटादि उपाधि भेद से भिन्नवत् प्रतीयमान होता है, इसी प्रकार मैंभी माया द्वारा अनेक रूप से विराजमान रहता हूं ॥४॥

उच्चनीचादिवस्तूनिभासयान्भासकरःसदा।
नदुष्यतितथैवाहंदोषैर्लिप्ताकदापिन ॥५॥

जैसे सूर्य अच्छी बुरी अनेक वस्तुओं को अपनी किरणोंसे प्रकाशित करके दूपित नही होते ऐसेहो मैं जगदन्तःपातिनी होकर भी जगत् के दोष में दूषित नहीं होती ॥५॥

मयिबुध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवपरेजनाः।
वदन्तिचात्माकर्त्तेतिविमूढानसुबुद्धयः ॥६॥

जो विमुग्ध हैं, वह बुध्यादि का कर्तृत्व मुझमें आरोपित कर आत्म स्वरूप मैं करता हूं, यह बात कहते हैं, किन्तु जो ज्ञानी हैं, वह मुझको सूर्यवत् साक्षिरूप से देखते हैं सुतरां मुझको कर्त्ता नहीं मानते ॥६॥

अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायायाभेदतस्तथा।
जीवेश्वरविभागश्चकल्पितोमाययैवतु ॥७॥

जिस प्रकार माया द्वारा जीव और ईश्वर का विभाग होता है, तिसी प्रकार माया द्वाराही ईश्वर का ब्रह्म विष्णु आदि रूपसे बहुत्व और अविद्या द्वारा मनुष्य पश्वादि रूप से जीवका बहुत्व सिद्ध होता है ॥७॥

घटाकाशमहाकाशविभागःकल्पितोयथा ।
तथैवकल्पितोभेदोजीवात्मपरमात्मनोः ८

जैसे घटाकाश और महाकाश को विभाग कल्पित होता है, ऐसेही जीव और परमात्मा का पूर्वोक्त नियम में विभाग कल्पित होता है ॥८॥

यथाजीवबहुत्वञ्चमाययैवनचस्वतः ।
तथोश्वरबहुत्वञ्चमयायानस्वभावतः ॥९॥

जिस प्रकार अविद्या द्वाराही जीवका बहुत्व कल्पित होता है वास्तविक नहीं है, इसी प्रकार माया द्वाराही ईश्वर काभी ब्रह्मा विष्णु आदि रूप से बहुत्व प्रतिपादित होता है। वास्तविक पक्षमें ईश्वर का बहुत्व नहीं है ॥९॥

देहेन्द्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ।
अविद्याजीवभेदस्यहेतुर्नान्यःप्रकीर्तितः॥१०॥
गुणानांवासनाभेदभेदितायाधराधर ।
मायासापरभेदस्यहेतुर्नान्यःकदाचन ॥११॥

देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि प्रभृति और वासना द्वारा भेद प्राप्त अविद्याही जीव भेदका कारण है, अन्य और कुछ नहीं

है और सात्त्विक, राजसिक, और तामसिक वासना से भिन्न मायाही ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति ईश्वर भेदका कारण है, इसके अतिरिक्त अन्य नही है ॥१०॥११॥

मयिसर्व्वमिदंप्रोतमोतञ्चधरणीधर।
ईश्वरोऽहञ्चसूत्रात्माविराडात्माहमस्मिच १२

यह धरणी धर ? यह संपूर्ण जगत् भीत भीत से मुझमेंही अवस्थित रहता है, अतएव मैंही कारण देहाभिमानी ईश्वर लिङ्ग देहाभिमानी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और स्थूल देहाभिमानी विराट् नाम से अभिहित हूं ॥१२॥

ब्रह्माहंविष्णुरुद्रौचगौरीब्राह्मीचवैष्णवी १३
सूर्य्योऽहंतारकाश्चाहंतारकेशस्तथास्म्यहं।
पशुपक्षिस्वरूपाहंचाण्डालोऽहञ्चतस्करः॥१४॥
व्याधोऽहंक्रूरकर्म्माहंसत्कर्म्माहंमहाजनः।
स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेवनसंशयः॥१५॥

मैंही ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर हूं एवं मैंही ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री शक्तिहूं मैंही सूर्य, मैंही तारका, मैंही चंद्र एवं मैं ही पशु, पक्षी, चाण्डाल और तस्कर स्वरूपिणी हूं मैंही व्याघ्र मैंही क्रूर कर्मा मैंही सत्कर्मशाली महाजन एवं मैंही स्त्री पुरुष और नपुंसक हूं इसमें संदेह नहीं है १३ १४।१५

यच्चकिञ्चित्क्वचिद्वस्तुदृश्यतेश्रूयतेऽपिवा।
अन्तर्वहिश्चतत्सर्वंव्याप्याहंसर्व्वदास्थिता १६

जिस किसी देश में जो कोई वस्तु देखने वा सुनने में आती है, मैं उन सब वस्तुओं में व्याप्त हो उनके भीतर बाहर अवस्थित रहती हूं ॥१६॥

नतदस्तिमयात्यक्तंवस्तुकिञ्चिच्चराचरं ।
यद्यस्तिचेत्तच्छून्यंस्याद्वन्ध्यापुत्रोपमंहितत्१७
रज्जुर्यथासर्पमालाभेदैरेकाविभातिहि ।
तथैवेशादिरूपेणभाम्यहंनात्रसंशयः ॥१८॥

मेरे अतिरिक्त इस चराचर में और किसी वस्तु काही अस्तित्व नहीं है, यदि कुछ है तो वह वन्ध्या पुत्रकी समान असत् है। जिस प्रकार एकमात्र रज्जु सर्प, और मालादि रूप से प्रतिभात होता है इसी प्रकार ब्रह्मस्वरूपिणी एकमात्र मैंही ईश्वरादि अनेक रूपसे प्रतिभात होती हूं इसमें संदेह नहीं है १८

अधिष्ठानातिरेकेणकल्पितंतन्नभासते ।
तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावन्नान्यथाभवेत्१९

कल्पित किसी वस्तु कीही अधिष्ठान से अतिरिक्त सत्ता नहीं है, अतएव मुझ में कल्पित यह जगत् भी मेरी सत्तासेही सत्तावान् होता है, इसके अतिरिक्त इसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है

॥ हिमालय उवाच ॥

यथावदसिदेवेशिसमष्ट्यात्मवपुस्त्विदं ।
तथैवद्रष्टुमिच्छामियदिदेविकृपामयि ॥२०॥

हिमालय ने कहा हे देवि ! आपने कृपा पूर्वक जैसे अपने समष्टि स्वरूप विराट् रूपके मेरे प्रति वर्णन किया, इसी प्रकार उसका दर्शन कराकर कृतार्थ कीजिये ! मेरी इस रूपके देखने की इच्छा हुई है ॥२०॥

॥ व्यास उवाच ॥

इतितस्यवचःश्रुत्वासर्वेदेवाःसविष्णवः ।
ननन्दुर्म्मुदितात्मानःपूजयन्तश्चतद्वचः॥२१॥

व्यासजी बोले की गिरिवर (हिमालय) का इस प्रकार बचन सुनकर बिष्णु इत्यादि समस्त देवगण ने मुदित चित्त से उस बाक्य को साधु साधु कहकर अभिनन्दन किया २१

अथदेवमतंज्ञात्वाभक्तकामदुघाशिवा ।
अदर्शयन्निजंरूपंभक्तकामप्रपूरिणी ॥२२॥

तदनन्तर भक्तवांछा कल्पतरु भक्तगणों की काम दुहा और कल्याण रूपिनी देवी ने स्वीय रूप देखने में देवताओं को उत्सुक जानकर अपना विराट् रूप दिखाया ॥२२॥

अपश्यंस्तेमहादेव्याविराट्रूपंपरात्परं ।
द्यौर्म्मस्तकम्भवेद्यस्यचन्द्रसूर्य्यौचचक्षुषी २३
दिशःश्रोत्रेवचोवेदाःप्राणोवायुःप्रकीर्त्तितः ।
विश्वंहृदयमित्याहुःपृथिवीजघनंस्मृतम् २४
नभस्तलंनाभिसरोज्योतिश्चक्रमुरःस्थलं ।

महर्लोकस्तुग्रीवास्याज्जनोलोकोमुखंस्मृतं२५
तपोलोकोरराटिस्तुसत्यलोकादधःस्थितः ।
इन्द्रादयोबाहवःस्युःशब्दःश्रोत्रंमहेशितुः २६

वह वक्ष्यमान् रूप में महादेवी का विराट् रूप अवलोकन करने लगे । सर्वोपरिस्थित सत्य लोकही इस विराट् रूपिणी का मस्तक, चन्द्र, और सूर्य दोनों नेत्र, संपूर्ण दिशा श्रोत्र, सर्व वेद वाक्य वायु प्राण विश्व उसका हृदय, पृथ्वी जघन· स्थल नाभि देश, ज्योतिष्कमण्डल उरःस्थल महर्लोक ग्रीवा-देश जनलोक मुखमण्डल, सत्यलोक के अधःस्थित तपलोक उसका ललाट फलक, इन्द्रादि उसकी बाहु, शब्द श्रवणेन्द्रिय स्वरूप, दोनों अश्विनीकुमार उसकी नासिका, गंध घ्राणे-न्द्रिय स्थानीय अग्निमुखाभ्यन्तर दिवा और रात्रि उसके दोनों नेत्र पक्ष्म प्रकाश पाने लगे ॥२६॥

नासत्यदस्रौनासेस्तोगन्धोघ्राणस्मृतोबुधैः ।
मुखमग्निःसमाख्यातोदिवारात्रीचपक्ष्मणी २७
ब्रह्मस्थानंभ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुःप्रकीर्तिताः
रसोजिह्वासमाख्यातायमोदंष्ट्राप्रकीर्त्तिताः२८
दन्ताःस्नेहकलायस्यहासोमायाप्रकीर्त्तिता ।
सर्गस्त्वपाङ्गमोक्षःस्याद्व्रीडोर्द्ध्वोष्ठोमहेशितुः॥
लोभःस्यादधरोष्ठोऽस्याधर्ममार्गस्तुपृष्ठभूः ।

प्रजापतिश्चमेढ्रं स्याद्यः स्रष्टाजगतीतले ॥३०॥
कुक्षिसमुद्रागिरयोऽस्थीनिदेव्यामहेशितुः।
नद्योनाड्यः समाख्यातावृक्षाः केशाः प्रकीर्त्तिताः

ब्रह्मज्ञान उसका सु विकास स्वरूप जल तालु तद्गत रस उसकी रसना यमदंष्ट्रा, स्नेह विलासही दन्त मायाही उसका हास्य ब्रह्माण्ड सृष्टि कटाक्ष लज्जा ऊर्द्ध ओष्ठ लोभ अधर और अधर्म उसका पृष्ठ भागहुआ। जो जगन्मण्डल के सृष्टिकर्त्ता हैं वही उसका मेढदेश, समुद्र सब उदार पर्वत समूह उस महेश्वरी की अस्थि समस्त नदियें हीं उसकी नाड़ी, और वृक्षावली केशरूप में प्रकाश पाने लगी ॥२८॥३१॥

कौमारयौवनजरावयोऽस्यगतिसत्तमा।
वलाहकास्तुकेशाः स्युः सन्ध्येतेवाससीविभोः ३२
राजन्श्रीजगदम्बायाश्चन्द्रमास्तुमनः स्मृतः।
विज्ञानशक्तिस्तुहरिसेरुद्रोऽन्तः करणंस्मृतं ३३

हे राजेन्द्र ? कौमार, योवन, और जराहो उसको उत्तमा गति मेघ समूह केश जाल, दोनों संध्या उस व्यापिका देवी के वसन, चन्द्रमा जगदम्बा का मन हरि विज्ञान शक्ति और रुद्रसंहार शक्ति हुए ॥३२॥३३॥

अश्वादिजातयः सर्व्वाः श्रोणिदेशेस्थिताविभोः।
अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतांगताः ३४

एतादृशंमहारूपंददृशुःसुरपुङ्गवाः ।
ज्वालामालासहस्राढ्यंलेलिहानञ्चजिह्वया ३५
दंष्ट्राकटकटारावंवमन्तंवह्निमक्षिभिः ।
नानायुधधरंवीरंब्रह्मक्षत्रौदनञ्चयत् ॥३६॥
सहस्रशीर्षनयनंसहस्रचरणंतथा ।
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशंविद्युत्कोटिसमप्रभम् ३७
भयङ्करंमहाघोरंहृदक्ष्णोस्त्रासकारकं ।
ददृशुस्तेसुराःसर्व्वेहाहाकारञ्चचक्रिरे ॥३८॥
विकम्पमानहृदयामूर्च्छामापुर्दुरत्ययां ।
स्मरणञ्चगतंतेषांजगदम्बेयमित्यपि ॥३९॥
अथतेयेस्थितावेदाश्चतुर्दिक्षुमहाप्रभोः ।

उस विभु जगदम्बिका के श्रोणिदेश में अश्वादि जाति और अतलादि पाताल पर्यन्त संपूर्ण लोक कटिदेश के अधो-भाग में स्थिति करनेलगे। देवतागण जगदम्बा की इस प्रकार विराट् मूर्ति का दर्शन करने लगे, कि उसको उस मूर्ति से सहस्र सहस्र अग्नि शिखा निकलने लगी। मानो वह मूर्ति जिह्वा द्वारा अनन्त जगत् का आस्वाद करती है॥ दशन पंक्ति के कटकटा शब्द में भीषणता धारण करी है। उस विराट् मूर्ति की अक्षि समूह अग्न्यु दिगरण करते हैं, वह आकृति नाना विध आयुध धारी और अत्यन्त बल सम्पन्न थी, ब्राह्मण और, क्षत्रिय उसका अन्न स्वरूप हुए। उस आकृति के

सहस्र मस्तक, सहस्र नयन, सहस्र चरन, करोड़ सूर्यकी समान जाज्वल्यमान और करोड़ करोड़ विद्युत् की समान प्रभायुक्त थे। अतीव भयंकर मन और नेत्रोंको त्रास जनक उस मूर्ति का दर्शन करके संपूर्ण देवता गण भय से हाहाकर करने लगे उसकाल उनका हृदय कांपने लगा और वह मूर्छित होकर गिरगये। यही हमारी पालन करनेवाली जगदम्बा है यह ज्ञानभी उनका नष्ट होगया ॥३४॥३९॥

बोधयामासुरत्युग्रंमूर्च्छातोमूर्च्छितान्सुरान्४०
अथतेधैर्य्यमलम्ब्यलब्ध्वाचश्रुतिमुत्तमां।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनारुद्धकण्ठास्तुनिर्ज्जराः॥
वास्यगद्गद्यावाचास्तोतुसमुपचक्रिरे॥४१॥

अनन्तर देवी के चारों ओर स्थित चारों वेदों ने मूर्छित देवतागणोंकी मूर्च्छा दूर करके बोधित किया। तदनन्तर वह देवता उत्तम श्रुति वाक्य द्वारा प्रबोधित हो धैर्य अवलम्बन पूर्वक प्रेमाश्रु पूर्ण नयन वरुद्ध कंठहो वास्य द्वारो गद् गद् वाक्य से जगदम्बिका का स्तव करने लगे ॥४०॥४१॥

॥ देवा ऊचुः ॥

अपराधंक्षमस्वाम्बपाहिदीनांस्त्वदुद्भवान्।
कोपंसंहरदेवेशिसभयारूपदर्शनात् ॥४२॥

देवता बोले हे देवेशि? हम लोग अत्यन्त दीन आपके

पुत्र हैं, आप हमारे अपराध क्षमा कीजिये और हमारे प्रति-कोप परित्याग कीजिये, हम आपका यह विराट् रूप देखकर अत्यन्त भीत हुए हैं ॥४२॥

कातेस्तुतिःप्रकर्त्तव्यापामरैर्निर्जरैरिह ।
स्वस्यपज्ञेयएवासौधावान्यश्चस्वविक्रमः ४३
तदर्व्वाक्जायमानानांकथंसविषयोभवेत् ४४

हे देवि ! पामर देवगण आपकी क्या स्तुति करैं ? आप स्वयं जब अपने पराक्रम की सीमा नहीं करसकती, तब हम आपके पीछे उत्पन्न होकर किस प्रकार उसको जान सकते हैं

नमस्तेभुवनेशानिनमस्तेप्रणवात्मिके ।
सर्व्ववेदान्तसंसिद्धेनमोह्रीङ्कारमूर्त्तये ॥४५॥
यस्मादग्निःसमुत्पन्नोयस्मात्सूर्यश्चचन्द्रमाः ।
यस्मादोषधयःसर्व्वास्तस्मैसर्व्वात्मनेनमः ४६

हे प्रणवात्मिके भुवनेश्वरि ? हम आपको नमस्कार करते हैं। आप समस्त वेदान्त प्रसिद्धा हैं, आपही ह्रीङ्कार मूर्ति हैं आपको नमस्कार है। जिनसे अग्नि, जिनसे सूर्य एवं चन्द्रमा और जिनसे सब औषधी उत्पन्न हुई हैं, उन्हीं सर्वात्म रूपिणी आपको नमस्कार है ॥४५॥४६॥

यस्माच्चदेवाःसम्भूताःसाध्याःपक्षिणएवच ।
पशवश्चमनुष्याश्चतस्मैसर्व्वात्मनेनमः ॥४७॥

प्राणापाणौव्रीहियवौतपःश्रद्धाक्रतुस्तथा।
ब्रह्मचर्य्यंविधिश्चैवयस्मातस्मैनमोनमः॥४८॥
प्राणापाणौव्रीहियवौ तपःश्रद्धाक्रतुस्तथा।
ब्रह्मचर्य्यंविधिश्चैव यस्मातस्मैनमोनमः॥४८॥
सप्तप्राणार्चियोयस्मात् समिधःसप्तएवच।
होमाःसप्ततथालोकास्तस्मेसर्व्वात्मनेनमः४९
यस्मात्समुद्रागिरयः सिन्धवःप्रचरन्तिच।
यस्मादोषधयःसर्व्वा रसास्तस्मैनमोनमः५०
यस्माद्यज्ञःसमुदभूतो दीक्षायूपश्चदक्षिणाः।
ऋचोयजंषिसामानि तस्मैसर्व्वात्मनेनमः५१

जिनसे संपूर्ण देवगण साध्यगण, पशुगण, पक्षिगण और मनुष्यगण उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं सर्वात्म रूपिणी को नमस्कार है। जिनसे प्राण, अपान, धान्य, यव एवं तपस्या, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और इति कर्त्तव्यता रूप संपूर्ण विधि उत्पन्न हुई है, हम उन्हीं विराट् रूपिणी को बारम्बार नमस्कार करते हैं। जिनसे सप्त प्राण सप्तदीप्ति सप्तसमिध् सप्तहोम और सप्त लोक उत्पन्न हुय हैं, उन्हीं सर्वात्मिका देवी को नमस्कार है जिनसे समस्त समुद्र समस्त पर्वत, समस्त नदी, समस्त औषधि और समस्त रस उत्पन्न हुआ है, हम उसी देवी को बारम्बार नमस्कार करते हैं,। जिनसे यज्ञ, यूप (पशुबन्धन दारु विशेष) और दक्षिण एवं ऋक् यजु और सामवेद उत्पन्न हुआ है,

हम उन्हीं सर्वात्मिका भुवनेश्वरी को प्रणाम करते हैं ४७ ५१

नमः पुरस्तात्पृष्ठेच नमस्तेपार्श्वयोर्द्धयोः।
अधऊर्द्ध्वंचतुर्दिक्षु मातर्भूयोनमोनमः॥५२॥
उपसंहरदेवेशि ! रूपमेतदलौकिकम् ।
अदेवदर्शयास्माकं रूपंसुन्दरसुन्दरम् ॥५३॥

हे मातः ? आपके पुरो भागमें नमस्कार है, आपके पृष्ठ भागमें नमस्कार है, आपके दोनों पार्श्वमें नमस्कार है, आपके ऊर्द्ध अधः और चारों दिक्में भूयो भूय नमस्कार है हे देवेशि अब आप अपने इस अलौकिक विराट् रूपको उप संहृत (दूर) करके उसी परम सुन्दर रूपसे हमलोगों को दर्शन दीजिये ॥

॥ व्यास उवाच ॥

इतिभीतानसुरान्दृष्ट्वाजगदम्बाकृपार्णवा।
संहृत्यरूपंघोरं तद्दर्शयामाससुन्दरम् ॥५४॥
पाशांकुशवराभीति धरंसर्व्वाङ्गकोमलम् ।
करुणापूर्णनयनं मन्दस्मितमुखाम्बुजं ॥५५॥
दृष्ट्वातत्सुन्दरंरूपंतदाभीतिविवर्ज्जिताः।
शान्तचित्ताःप्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिस्वनाः ५६

व्यासजीने कहा करुणा सागर रूपिणी जगदम्बा ने देवताओं को भीत देखकर उस भयंकर रूपका उपसंहार कर सुंदर रूप दिखाया। इस मूर्ति का सर्वाङ्ग अत्यन्त कोमल था

यह पाश, अंकुश वर और अभय धारिणी करुणा पूर्ण नेत्र स्मेराननी थी। देवता गणों ने जगदम्बा की इस प्रकार सुंदर मूर्ति अवलोकन कर भय रहित हो शान्त चित्त पूर्वक हर्ष गद्‌ गद्‌ स्वर से प्रणाम किया ॥५४॥५६॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे अष्टादश सहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां जगदम्बा या विराट् मूर्ति वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

क्वयूयंमन्दभाग्यावै क्वेदंरूपंमहाद्भुतम् ।
तथापिभक्तवत्सल्या दीदृशंदर्शिमया ॥१॥

देवी ने कहा कि हे देवतागण ? तुम्हारी समान मंदभाग्य व्यक्तिगण के पक्षमें मेरा यह अद्भुत महत् रूप देखनो अत्यन्त दुर्लभ था, परन्तु तोभी भक्तगणों के प्रतिवात्सल्य के वशी-भूत हो मैंने तुमलोगों को इस रूपका दर्शन कराया ॥१॥

नवेदाध्ययनैर्योगैर्नदानैस्तपसेज्यया ।
रूपंद्रष्टुमिदंशक्यंकेवलंमत्कृपांविना ॥२॥

मेरी कृपा के अतिरिक्त वेदाध्ययन योग दान यज्ञ अथवा तपस्या इनमें किसी साधन से कोई व्यक्ति मेरी इस मूर्तिका दर्शन नहीं कर सकता ॥२॥

प्रकृतंशृणुराजेन्द्रपरमात्मात्रजीवतां।
उपाधियोगात्संप्राप्तःकर्त्तृत्वादिकमप्युत॥३॥
क्रियाःकरोतिविविधाधर्म्माधर्म्मैकहेतवः।
नानायोनीस्ततःप्राप्यसुखदुःखैश्चयुज्यते॥४॥

हे राजेन्द्र? अब प्रकृत उपदेश श्रवण करो। मायामय संसार में परमात्माही उपाधि योग वशता जीवत्व और कर्तृत्व भोक्तृत्वादि को प्राप्त होकर प्रथम तो धर्म और अधर्म के हेतु भूत अनेक कार्य्यों का अनुष्ठान करता है, इसके उपरान्त अनेक योनियों में प्राप्त होकर कर्म फलानुसार सुखदुःख भोग करता है॥३॥४॥

पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्म्मरतःसदा।
नानादेहान्समप्राप्नोतिसुखदुःखैश्चयुज्यते॥५॥

फिर उस सुख दुःख के संस्कार वश अनेक प्रकार के कर्मों में निरत और अनेक देहों को प्राप्त होकर सुख दुःख से संयुक्त होता है॥५॥

घटीयन्त्रवदेतस्यनविरामःकदापिहि।
अज्ञानमेवमूलंस्यात्ततःकामःक्रियास्ततः॥६॥

घटी यंत्र की समान जन्म जरा मरण रूप इस संसार का कभी विराम नहीं होता। यह अनादि और अनन्त कालसेही प्रवाहित होता है॥ अज्ञान वा अविद्याही इस संसार की जड़ है, इससे काम और काम से क्रिया निष्पन्न होती है॥६॥

तस्मादज्ञाननाशाययतेतनियतंनरः।
एतद्विजन्मसाफल्यंयदज्ञानस्यनाशनं ॥७॥

अतएव अज्ञान का नाश करने के लिये सदाही मनुष्य को यत्नवान होना चाहिये। इस अज्ञान का नाश करने सेही जन्म सफल होता है ॥७॥

पुरुषार्थसमाप्तिश्चजीवन्मुक्तदशापिच।
अज्ञाननाशनेशक्ताविद्यैवतुपटीयसी ॥८॥
नकर्म्मतज्जंनोपास्तिर्विरोधाभावतोगिरे।
प्रत्युताशाऽज्ञाननाशेकर्म्मणानैवभाव्यतां ९

जीवन्मुक्त अवस्था लाभ कर सकने सेही पुरुषार्थ की समाप्ति होती है. फिर और पुरुष का कर्त्तव्य कुछ भी नहीं रहता। इस अज्ञान का नाश करने में केवल विद्याही समर्थहै हे गिरिवर ? जिसप्रकार अन्धकार अन्धकार का नाश करने में समर्थ नहीं है इसीप्रकार अज्ञान जनित कर्म अज्ञान को नष्ट नहीं कर सकते, और उपासना भी कर्म स्वरूप है, सुतरां उसके द्वारा अज्ञान का नाश होना संभव नहीं है, अतएव कर्म के द्वारा अज्ञान का नाश करने की भी कभी आशा नहीं करनी चाहिये ॥८-९॥

अनर्थदानिकर्म्माणिपुनःपुनरुशन्तिहि।
ततोरागस्ततोदोषस्ततोऽनर्थोमहान्भवेत् १०

सम्पूर्ण कर्म केवल अनर्थ दायक हैं, इस कर्म के वशही

जीवगण वारम्बार विषय कामना करते हैं, इस कामना से विषयानुराग अनुराग से क्रोधादि दोष और दोष से महान् अनर्थ संघटित होता है ॥१०॥

तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेनज्ञानंसम्पादयेन्नरः ।
कुर्व्वन्नेवेहकर्म्माणीत्यतःकर्म्माप्यवाश्यकं११
ज्ञानादेवहिकैवल्यमतःस्यात्तत्समुच्चयः ।
सहायतांव्रजेत्कर्म्मज्ञानस्यहितकारिच॥१२॥
इतिकेचिद्वदन्त्यत्रतद्विरोधान्नसम्भवेत् ।
ज्ञानाद्धृद्ग्रन्थभेदःस्याद्धृद्ग्रन्थौकर्मसम्भवः१३
यौगपद्यंनसम्भाव्यंविरोधात्तुततस्तयोः ।
तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यंनसम्भवि॥१४॥

अतएव ज्ञान उपार्जन के निमित्त सब प्रकार से मनुष्य को यत्न करना कर्त्तव्य है। कोई कहते हैं "कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि" इत्यादिश्रुति से कर्मानुष्ठान की आवश्यकता और"ज्ञाना देवतु कैवल्यं" इत्यादि श्रुति से ज्ञान की आवश्यकता प्रति पादित हुई है, अतएव ज्ञान कर्म दोनोंही मुक्ति के कारण हैं तिस में कर्म ज्ञान का सहाय और हितकारी है। वास्तविक पक्षमें यह मत स्थिर नहीं होसकता, क्योंकि ज्ञान के अनन्तर यदि कर्म संभव होता, तो ज्ञान कर्म दोनों कीही कारणता सिद्ध होतीहै, फल पक्ष में वह नहीं होती। ज्ञान के उत्पन्न होने सेही हृद ग्रन्थि अर्थात् आत्मा के सहित अन्तःकरणादि

का तादात्म्य भाव विदूरित हो जाता है, सुतरां तव कर्म का संभव नहीं रहता, हृद ग्रन्थि अर्थात् मैं मनुष्य मैं ब्राह्मण मैं परलोक का इच्छु इत्यादि भेद ज्ञान रहने सेही लोक कर्म में प्रवृत्त होते हैं। अतएव तमः (अन्धकार) और आलोक (प्रकाश) की जिस प्रकार एकत्र अवस्थिति संभव नहीं है, इसीप्रकार ज्ञान और कर्म की एकत्र स्थिति नहीं होसकती, सुतरां कर्म प्रतिपादिका श्रुति अज्ञानी के पक्ष में समझनी होगी॥११-१४॥

तस्मात्सर्व्वाणिकर्म्माणिवैदिकानिमहामते ।
चित्तशुद्ध्यन्तिमेवस्युस्तानिकुर्यात्प्रयत्नतः॥

अतएव हे महामते ? जव तक चित्त शुद्धि हो, तव तक अति यत्न पूर्वक संपूर्ण वैदिक कार्य का अनुष्ठान करै ॥१५॥

शमोदमस्तितिक्षाचवैराग्यंसत्वसम्भवः ।
तावत्पर्य्यन्तमेवस्युःकर्म्माणिनततःपरं॥१६॥

जव तक शम (अन्तरिन्द्रिय निग्रह) तितिक्षा (शीतोष्णादि सहिष्णुता) वैराग्य (ऐहिक पारत्रिक फल भोग विराग) और सत्व सम्भव (अन्तःकरण गत सत्व गुण की शुद्धि) नहो तव तक ही कर्म का अनुष्ठान करै, तिस के पीछे फिर कर्म की आवश्यकता नहीं है ॥१६॥

तदन्तेचैवसंन्यस्यसंश्रयेद्गुरुमात्मावान् ।
श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठञ्चभक्त्यानिर्व्याजयापुनः१७

तिस के उपरान्त फिर संन्यासाश्रम ग्रहण पूर्वक आत्म

वान् अर्थात् संयतेन्द्रिय होकर वेदाध्ययन सम्पन्न श्रोत्रिय (अधीत वेदवेदार्थ) ब्रह्म निष्ठ गुरु के निकट उपसन्नहो अकपट भक्ति सहित उनका आश्रय ग्रहण करै ॥१७॥

वेदान्तश्रवणंकुर्य्यान्नित्यमेवमतन्द्रितः ।
तत्वमस्यादिवाक्यस्यनित्यमर्थंविचारयेत् १८

और आलस्यादि दोष दूर करके नित्य वेदान्त वाक्य श्रवण और "तत्व मस्यादि" वेद वाक्यके अर्थ विचार करै१८

तत्वमस्यादिवाक्यन्तुजीवब्रह्मैक्यबोधकं ।
ऐक्येज्ञातेनिर्भयस्तुमद्रूपोहिप्रजायते ॥१९॥

तत्व मस्यादि वाक्य ने जीव और ब्रह्मकी एक्यता प्रति पादन की है, अतएव इस वाक्य द्वारा जीव ब्रह्म की ऐक्यता का ज्ञान साधित होने से तव पुरुष निर्भय और सत्स्वरूप को प्राप्त होता है ॥१९॥

पदार्थावगतिःपूर्व्वंवाक्यार्थावगतिस्ततः
तत्पदस्यचवाच्यार्थोगिरेऽहंपरिकीर्त्तितः २०
त्वंपदस्यचवाच्यार्थोजीवएवनसंशयः ।
उभयोरैक्यमसिनापदेनप्रोच्यतेबुधैः ॥२१॥
वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यंनैवघटेतह ।
लक्षणातःप्रकर्त्तव्यातत्वमोःश्रुतिसंस्थयोः २२

प्रथम तो तत् उत्वं पद के अर्थ से अवगत होवे, फिर "तत्वमसि" इस समस्त वाक्य को अर्थ हृदय गम करै । हे

गिरे? अब पूछना यह है कि, जीव और ईश्वर संपूर्ण विभिन्न धर्म विशिष्ट है अतएव श्रुति ने दोनों का एक्य किस प्रकार प्रतिपादित किया है? जीव असर्व्वज्ञत्व और परिछिन्नत्वादि निकृष्ट धर्म सम्पन्न और ईश्वर सर्व्वज्ञत्व और व्यापकत्वादि उत्कृष्ट गुण सम्पन्न है, अतएव विरुद्ध धर्म विशिष्ट जीव और ईश्वर का एक्य कभी संघटित नहीं हो सकता, अतएव ऐक्य प्रतिपादन के निमित्त श्रुति स्थिति तत् और त्वं पद की लक्षणा कथित होगी ॥२२॥

चिन्मात्रन्तुतयोर्लक्ष्यंतयोरैक्यस्यसम्भवः।
तयोरैक्यंतथाज्ञात्वास्वाभेदेनाद्वयोभवेत् २३

सर्व्वज्ञत्वादि विशिष्ट ब्रह्म चैतन्यही ईश्वर है और असर्व्वज्ञत्वादि विशिष्ट ब्रह्म चैतन्यही जीव है सुतरां चैतस्यांश में दोनों ही एक्य हैं, केवल मात्र धर्म के द्वाराही परस्पर की भिन्नता हुई है, अतएव दोनों का धर्म परित्याग पूर्वक लक्षण द्वारा चैतन्य मात्र ग्रहण करना कर्त्तव्य है, क्योंकि इन दोनों पदों का मुख्य लक्ष्यार्थ है, सुतरां लक्ष्यार्थ ग्रहण करने सेही दोनों का ऐक्य प्रतिपादित हुआ। इसप्रकार ऐक्य ज्ञान साधित होने सेही ब्रह्म के सहित अभेद ज्ञान हो जीव अद्वय होता है ॥२३॥

देवदत्तःसएवायमितिवत्लक्षणास्मृता।
स्थूलादिदेहरहितोब्रह्मसम्पद्यतेनरः ॥२४॥

इस लक्षण के विषय में लौकिक दृष्टान्त दिखाते हैं। "सएवायं देवदत्तः" यह कहने से तत्काल दृष्टदेव दत्तः और वर्त्तमान काल दृष्ट देवददत्त इसप्रकार अर्थ समझाता है। सुतरां तत्काल विशिष्ट देवदत्त और एतत् काल विशिष्ट देवदत्त का अभेद नहीं होसकता, अतएव तत्काल विशिष्टत्व और एतत् काल विशिष्टत्व रूप दोनों विरुद्ध धर्म परित्याग पूर्वक केवल मात्र देवदत्त रूप व्यक्ति का ग्रहण करके अभेद प्रतीत होतीहै इसप्रकार के अनुभव द्वारा मनुष्य स्थूलादि तीनों देह से रहित होकर ब्रह्मरूप में सम्पन्न होसकता है ॥२४॥

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भूतःस्थूलदेहकः ।
भोगालयोजराव्याधिसंयुतःसर्व्वकर्म्मणां २५
मिथ्याभूतोयमाभातिस्फुटंमायामयत्वतः ।
सोऽयंस्थूलउपाधिःस्यादात्मनोमेनगेश्वर २६

अनन्तर तीनों देह स्पष्ट रूप से वर्णित होते हैं। यह स्थूल देह पूर्वोक्त पञ्चीकृत महाभूत से उत्पन्न होता है। वह सम्पूर्ण कर्मों की भोगभूमि और जरा व्याधि संयुक्त है। यह देह माया कल्पित है, सुतरां मिथ्याकहकर स्पष्टतः प्रतीयमान होता। हेगिरेश्वर ! यही आत्म रूपिणी मेरी स्थूल उपाधि जाने ॥२५--२६॥

ज्ञानकर्म्मेन्द्रिययुतंप्राणपञ्चकसंयुतम् ।
मनोबुद्धियुतञ्चैतत्सूक्ष्मंतत्कवयोविदुः ॥२७॥

अपञ्चीकृतभूतोत्थंसूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः।
द्वितीयोयमुपाधिःस्यात्सुखादेरवबोधकः॥२८॥

पण्डित गण पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय, पंचप्राण एवं मन और बुद्धि इन सप्तदश पदार्थ को सूक्ष्म देह कहते हैं यह अपञ्चीकृत पंच भूत से उत्पन्न है, यही आत्मा का सूक्ष्म देह और द्वतीय उपाधि है, इसके द्वारा आत्मा का सुखादि ज्ञान होता है ॥२७-२८॥

अनाद्यनिर्व्वाच्यमिदमज्ञानन्तुतृतीयकः।
देहोऽयमात्मनोभातिकारणात्मानगेश्वर ॥
उपाधिविलयेजातेकेवलात्मावशिष्यते २९

हे नगेश्वर ! अनादि अनिर्वचनीय अज्ञान आत्मा का तृतीय देह है, इसको कारण देह कहते हैं, यह भी आत्माकी उपाधि है। इन सब उपाधियों के लय होने से केवल मात्र आत्मा से ही अवशिष्ट रहता है ॥२९॥

देहत्रयेपञ्चकोशाअन्तःस्थाःसन्तिसर्व्वदा।
पञ्चकोशपरित्यागेब्रह्मपुच्छंहिलभ्यते ॥३०॥

इन पूर्वोक्त तीनों देह के भीतरही अन्नमय, प्राणमय, मनो मय, विज्ञानमय, और आनन्द मय यह पञ्चकोश अन्तर्भूत है, इस पञ्चकोश का परित्याग कर सकने से ब्रह्म लाभहोता है, यह ब्रह्मही मेरा स्वरूप है, यही श्रुति में "नेतिनेति"

इत्यादि वाक्य द्वाराप्रतिपादित हुआहै, अर्थात् दृश्य श्रव्यादि जो कुछ है वह सभी आत्मा नहीं है, इसप्रकार से निषेध की अवधि स्वरूप में आत्मा निरूपित हुआहै ॥३०॥३१॥

नजायतेम्रियतेतत्कदाचिन्नायंभूत्वानवभूव कश्चित्। अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे ॥३२॥

इस परब्रह्म का कभी जन्म वा विनाश नहीं होता और यह उत्पन्न होकर विद्यमान नहीं रहते, किन्तु सदाही विद्यमान हैं, क्योंकि यह अज, नित्य सनातन औरपुरातन और इस शरीर नष्ट होनेपर भी उनका कभीविनाश नहीं होता ३२

हन्ताचेन्मन्यतेहन्तुंहतश्चेन्मन्यतेहतम्। उभौतौनवीजानीतोनायंहन्तिनहन्यते ॥३३॥

जो किसी व्यक्ति को हत हत (मार)करके "आत्माहंता" यह मन में जाने और जो हत होकर "आत्मा हत हुआ है" इसप्रकार मनमें जाने, वह दोनोंही प्रकृत तत्व से अनभिज्ञहैं, क्योंकि आत्मा कदापि किसी का वध कर्त्ता नहीं होसकता और कभी वध्यभी नहीं होसकता ॥३३॥

अणोरणीयान्महतोमहीया नात्मास्यजन्तोर्निहतोगुहायाम्। तमक्रतुःपश्यतिवीतशोकोधातुप्रसादान्महिमानमस्य ॥३४॥

यह आत्मा सूक्ष्म तर और महान् से महान् तर है, यह

बुद्धि रूप गुहा में स्थित है अर्थात् एकमात्र बुद्धि गम्य पदार्थ है। जो चित्त शुद्धि युक्त और संकल्प विकल्प रहित है, वही उसकी महिमा से अवगत होसक्ता है, और इसको जानकर शोक रहित होता है ॥३४॥

आत्मानंरथिनंविद्धिशरीरंरथमेवतु ।
बुद्धिन्तुसारथिंविद्धिमनःप्रग्रहमेवच ॥३५॥
इन्द्रियाणिहयानाहुर्विषयांस्तेषुगोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तंभोक्तेत्याहुर्म्मनीषिणः॥

इस आत्मा को रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि, मन मुख रज्जु (लगाम) और इन्द्रिय गण को अश्वजानि। यह इन्द्रिय अश्वगण का विषय सबकोही गन्तव्य मार्ग है। मनीषिगण आत्मा अर्थात् चिताभास इन्द्रिय और मनोयुक्त कूटस्थ पुरुष कोही भोक्ता वा रथी कहते हैं ॥३५॥३६॥

यस्त्वविद्वान्भवतिचामनस्कश्चसदाऽशुचिः ।
नतत्पदमवाप्नोतिसंसारञ्चाधिगच्छति ॥३७॥

जो पुरुष अविवेकी, असंयतेन्द्रिय और सदा सत्कर्म से रहित है, वह व्यक्ति परमात्म पद को प्राप्त नहीं होसकता वरन जन्मादि रूप संसार प्राप्त होता है ॥३७॥

यस्तुविज्ञानवान्भवतिसमनस्कःसदाशुचिः ।
सतुतत्पदमाप्नोतियास्माद्भूयोनजायते ॥३८॥

जो विवेकी संयतेन्द्रिय और सत्कर्म शाली है, उसको वह आत्मपद प्राप्त होता है, उसकी फिर संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती ॥३८॥

विज्ञानसारथिर्यस्तुमनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनःपारमाप्नोतिमदीयंयत्परंपदम्॥ ३९॥

विवेक ज्ञान जिसका सारथि और मन जिसका प्रग्रह (मुखरज्जु) अर्थात् मनरज्जु द्वारा जिसने विषय रूपी अश्वको बांध लिया है, वह इस संसार समुद्र के पर जाकर मेरे सच्चिदानंद स्वरूप परम पदको प्राप्त होसकता है ॥३९॥

इत्थंश्रुत्याचमत्याचनिश्चित्यात्मानमात्मना।
भावयन्मामात्मरूपांनिदिध्यासनतोऽपिच४०

इस प्रकार से वेदान्त श्रवण और श्रुति वाक्य के मनन द्वारा संशय विपर्यास रहित भावमें आत्मा को परीक्षा रूपसे जानकर साक्षात् कार के निमित्त एकाग्र चित्त से अन्तःकरण के द्वारा आत्मरूपिणी मेरी भावना करै ॥४०॥

योगवृत्तेःपुरास्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम् ।
देवीप्रणवसंज्ञस्यध्यानार्थंमन्त्रवाच्ययोः॥४१॥

इस प्रकार भावना के अभ्यास द्वारा जब चित्त समाधि में उपयुक्त हो उसी समय अपने शरीर में, माया बीज और उसके वाच्य विषय को ध्यान करने के निमित्त माया बीजके तीन अक्षर की वक्ष्यमाण प्रकार से भावना करै ॥४१॥

हकारःस्थूलदेहःस्याद्रकारःसूक्ष्मदेहकः ।
ईकारःकारणात्मासौह्रींकारोऽहंतुरीयकम् ४२

यथा हकार स्थूलदेह, रकार सूक्ष्म देह ईकार कारण देह और तुरीय ब्रह्मरूपिणी मैंहो बिन्दूरूपसे अवस्थिति करतीहूं

एवंसमष्टिदेहेऽपिज्ञात्वाबीजत्रयंक्रमात् ।
समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वंभावयेन्मतिमान्नरः॥४३॥

इस प्रकार से व्यष्टि देह में अक्षर त्रयको चिन्ता करके समष्टि देह मेंभी यथाक्रम से पूर्वोक्त अक्षर त्रयकी चिन्ता करै, अनन्तर बुद्धिमान व्यक्ति समष्टि और व्यष्टि का अर्थात् इस स्थूल पिंड और ब्रह्माण्ड का एकत्व भावना करै ॥४३॥

समाधिकालात्पूर्वन्तुभावयित्वैवमादृतः ।
ततोध्यायेन्निलीनाक्षोदेवींमांजगदीश्वरीं ४४

समाधि के पूर्व में यत्न पूर्वक इस प्रकार भावना करके दोनों नेत्र बंदकर द्योतनशीला जगदीश्वरी मेराध्यान करै ४४

प्राणापानौसमौकृत्वानासाभ्यन्तरचारिणौ ।
निवृत्तविषयाकाङ्क्षोवीतदोषोविमत्सरः ४५
भक्त्यानिर्व्याजयायुक्तोगुहायांनिःस्वनेस्थले।
हकारंविश्वमात्मानंरकारेप्रविलापयेत् ॥४६॥
रकारंतैजसंदेवमीकारेप्रविलायेत ।
ईकारंप्राज्ञमात्मानंह्रींकारेप्रविलायेत् ॥४७॥
वाच्यवाचकताहीनंद्वैतभावविवर्जितम् ।

अखण्डंसच्चिदानन्दंभावयेत्तच्छिखान्तरे ४८

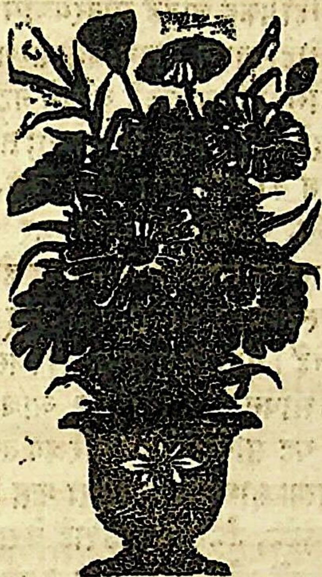
समस्त विषय वासना से निराकांक्षी, क्रोधादि दोष रहित और मत्सर विहीन होकर प्राणायाम के अभ्यास से नासाभ्यन्तर वर्त्ती प्राण और अपान वायु की समता सम्पादन पूर्वक अकपट भक्ति सहित निःस्वन स्थान में वैश्वानरात्मक हकार वाच्य स्थूल देहको रकार वाच्य स्थूल देहमें विलीन करै, अनन्तर तैजसात्मक रकार वाच्य सूक्ष्म देहको इकार वाक्य कारण देहमें लीन करके प्राज्ञात्मक ईकार वाच्य कारण देह को ह्रीङ्कार में विलीन करै। फिर वाच्य वाचक भवना विहीन, द्वैतवर्जित, अखंड सच्चिदानंद रूपस्वरूप परमात्माको चैतन्याग्नि दीप शिखामें भावना करै ॥४५॥४८॥

इतिध्यानेनमांराजन्साक्षात्कृत्यनरोत्तमः।
मद्रूपएवभवतिद्वयोरप्येकतायतः ४९ ॥
योगयुक्त्यानयादृष्ट्वामामात्मानंपरात्परं।
अज्ञानस्यसकार्य्यस्यतत्क्षणेनाशकोभवेत् ५०

हे गिरिराज ! नरोत्तम व्यक्ति इस प्रकार ध्यान द्वारा मेरा साक्षात्कार कर जीव ब्रह्मकी ऐक्यता के ज्ञानसे युक्त हो मेरे स्वरूप को लाभ करता है, और पूर्वोक्त योगानुष्ठान द्वारा परात्परा आत्मरूपिणी मेरी साक्षात्कार लाभ करके तत्काल अज्ञान और तदीय कार्योंका नाश करता है ॥४९॥५०॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे अष्टदश सहस्त्र्यां संहितायां सप्तम स्कन्धेदेवीगीतायां मोक्षज्ञानोत्पत्ति वर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः॥





॥ शिवोक्तबृहत्सावरतन्त्र

॥ विधान तथा भाषाटीका सं

पाठकगण ! जितने मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र हैं वे सम
कलियुगमें कील दिये हैं इसकारण ! सिद्ध होते न
में सिद्धहोने के सावरमंत्र शिवजीने वनाये हैं । जो
देतेहैं, प्रत्यक्षमेंदेखा जाताहै कि बिच्छू, सर्प, सिं
इन सावर मंत्रों सेही पकडे जातेहैं सावरमंत्रोसेही
कीचिकित्सा होतीहै, मारण, मोहन, वशीकरण,
षट्कर्म सावरमंत्रोंसेही सिद्ध होतेहैं अन्यसे नहो
द्वारा बंगाले आदिमें जादू, टोना, छिपजाना; तोत
लेना तथा दूर देश की बस्तु मँगा लेना भूत,
डाकिनी, शाकिनी, यक्षिणी को वशमें कर ले
इन्द्रजाल विद्या समस्त सावर मंत्रोंसे सिद्ध होते

आज हम इस अत्यंत गोप्य सावरतंत्रको जगत् क
प्रकाशित कियेदेतेहैं । यह वही सावरतन्त्र है जिस
दिनमें सुख पूर्वक साधन करके विचित्र २ आश्चर्य
करलेता है हमने यह सावरतंत्र बडे परिश्रम तथा
जगत् प्रसिद्ध महात्मा कामराज सिद्धद्वारा प्राप्त कि
तक जितनी पुस्तकेंमंत्र, तंत्रशास्त्रकीछपीहैं वे सम
कीलनेसे फलरहितहैं और मनुष्य बृथा न पच म
सावरतन्त्र मन्त्रशास्त्र की मर्य्यादा रखनेको शिव
जिसके देखने से अविश्वासी मनुष्यों को भी वि
पड़ता है वहुतसे विश्वासी प्रसिद्ध २ पुरुषों के
हमारे पास अवस्थित हैं वस हम इतनाहीं लिखते
बार इस अनुपम ग्रन्थ को मंगाकर परीक्षा करें जि
परिश्रम सफल हो । ग्रन्थ उत्तम टाइप, जिल्द स
पर भी मूल्य सर्व सुगम डाक ब्यय सहित १॥,

मिलनेका पता पं० हरिशङ्करशास्त्री

